अध्याय 6

खुली अर्थव्यवस्था समष्टि अर्थशास्त्र

अभी तक हमने माना है कि हमारी अर्थव्यवस्था एक बंद अर्थव्यवस्था है जो विश्व के अन्य भाग से अन्योन्याश्रित नहीं है। यह इसलिए किया गया ताकि प्रारूप और समष्टि अर्थशास्त्र के आधारिक तंत्र की व्याख्या सरल हो। विश्व की दूसरी अर्थव्यवस्थाओं के संपर्क में आने से प्राय: तीन प्रकार से हमारे चयन का विस्तार हुआ है:

(i) उपभोक्ताओं और फर्मों को घरेलू एवं विदेशी वस्तुओं के बीच चयन का अवसर मिलता है। यह उत्पाद बाज़ार में सहलग्नता है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न होती है।

(ii) निवेशकों को भी घरेलू और विदेशी परिसंपत्तियों के बीच चयन का अवसर प्राप्त होता है। इससे वित्तीय बाज़ार सहलग्नता का निर्माण होता है।

(iii) फर्मों को उत्पादन के स्थान का चयन करने तथा श्रमिकों को कहाँ काम करें, यह चयन करने की स्वतंत्रता होती है। इसे कारक बाज़ार सहलग्नता कहते हैं। अप्रवासन कानूनों के माध्यम से लोगों के आवागमन पर बहुत-से प्रतिबंधों के कारण श्रम बाज़ार सहलग्नता अपेक्षाकृत कम होती है। वस्तुओं का संचलन परंपरागत रूप से श्रम के संचलन के स्थानापन्न के रूप में देखा गया है। हम यहाँ प्रथम दो सहलग्नताओं पर प्रकाश डालते हैं।

खुली अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्य.वस्था है, जिसमें अन्य राष्ट्रों के साथ वस्तुओं और सेवाओं तथा बहुधा वित्तीय परिसंपत्तियों का भी व्यापार किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारतीय विश्व के अन्य देशों में उत्पादित वस्तुओं का उपभोग करते हैं तथा हमारे उत्पादन का कुछ भाग विदेशों को निर्यात किया जाता है। अत: विदेशी व्यापार भारतीय समस्त माँग को दो प्रकार से प्रभावित करता है। पहला, जब कोई भारतीय विदेशी वस्तुएँ खरीदता है, तो उसके द्वारा किया गया व्यय समस्त माँग को कम करते हुए आय के वर्तुल प्रवाह से *रिसाव* के रूप में निष्कासित होता है। दूसरा, विदेशों को जो हम निर्यात करते हैं वह घरेलू उत्पादित वस्तुओं के लिए समस्त माँग में वृद्धि करते हुए वर्तुल प्रवाह में *अंत:क्षेपण* के रूप में प्रवेश करता है। कुल विदेशी व्यापार (आयात+निर्यात) सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में किसी अर्थव्यवस्था के ***खुलेपन की मात्रा*** का सामान्य माप है। वर्ष 2006-07 में भारतीय अर्थव्यवस्था में यह 34.9 प्रतिशत (सकल घरेलू उत्पाद में आयात 20.9 प्रतिशत एवं निर्यात 14 प्रतिशत है) था। यह 1985-86 के कुल 16 प्रतिशत से पर्याप्त मात्रा में अधिक है। यद्यपि अन्य देशों की तुलना में भारत में खुलापन कम है। ऐसे कई देश हैं जिनका विदेशी व्यापार अनुपात सकल घरेलू उत्पाद के 50 प्रतिशत से अधिक है।

जब वस्तुओं का संचलन राष्ट्रीय सीमा के बाहर होता है, तो *मुद्रा* का संचलन अवश्य ही विपरीत दिशा में होता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई एकल करेंसी नहीं है, जिसे किसी केंद्रीय प्राधिकरण के द्वारा जारी किया गया हो। कोई विदेशी आर्थिक एजेंट तब ही किसी राष्ट्रीय करेंसी को स्वीकार करेगा, जब उसे विश्वास होगा कि उक्त करेंसी की क्रय-शक्ति स्थिर रहेगी। इस विश्वास के बिना किसी भी करेंसी का विनिमय के अंतर्राष्ट्रीय माध्यम के रूप में उपयोग नहीं होगा और न ही लेखा की इकाई के रूप में इसका उपयोग होगा, क्योंकि ऐसा कोई अंतर्राष्ट्रीय प्राधिकरण नहीं है जिसके पास यह शक्ति हो कि वह अंतर्राष्ट्रीय लेन-देन में किसी विशेष करेंसी के उपयोग को लागू कर सके। भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों के द्वारा संभाव्य उपयोगकर्ताओं का विश्वास पाने के लिए यह घोषणा की गई है कि राष्ट्रीय मुद्रा निर्बाध रूप से स्थिर कीमत पर दूसरी परिसंपत्तियों में परिवर्तनीय होगी, जिसके मूल्य पर जारीकर्ता प्राधिकरण का कोई नियंत्रण नहीं होगा। यह दूसरी परिसंपत्ति बहुधा सोना या अन्य राष्ट्रीय मुद्राएँ होंगी। इस वचनबद्धता के दो पहलू होते हैं जिनसे इनकी विश्वसनीयता प्रभावित होती है– असीमित मात्रा में निर्बाध रूप से परिवर्तन की क्षमता और कीमत जिस पर परिवर्तन होता है। इन्हीं मुद्दों का निराकरण करने तथा अंतर्राष्ट्रीय संचलन में स्थिरता लाने के लिए *अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली* की स्थापना की गई है। उपर्युक्त दोनों मुद्दों के संबंध में किसी राष्ट्र की प्रतिबद्धता से विश्व के अन्य देशों के साथ उसका व्यापार और वित्तीय संपर्क प्रभावित होगा।

खंड 6.1 का आरंभ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय प्रवाहों के लेखांकन से किया गया है। अगले खंड में राष्ट्रीय करेंसियों का एक-दूसरे के साथ विनिमय की कीमत निर्धारण का परीक्षण किया गया है। खंड 6.3 में अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों को शामिल करने के लिए बंद अर्थव्यवस्था आय-व्यय मॉडल में संशोधन किया गया है। अनुभाग 6.4 व्यापार घाटा, बजट घाटा और बचत-निवेश अंतराल के बीच संलग्नता का संक्षिप्त विवरण देता है।

6.1 अदायगी-संतुलन

अदायगी-संतुलन में किसी एक देश के निवासियों और शेष विश्व के बीच वस्तुओं, सेवाओं और परिसंपत्तियों की लेन-देन का विवरण दर्ज़ होता है। किसी खास समयावधि में, खासकर एक वर्ष में तालिका 6.1 में भारतीय अर्थव्यवस्था में वर्ष 2006-07 का अदायगी संतुलन का सारांश दिया गया है। अदायगी-संतुलन के दो मुख्य खाते होते हैं– चालू खाता और पूँजी खाता।

चालू खाते में वस्तुओं के आयात-निर्यात, सेवाओं और अंतरण-अदायगियों के विवरण दर्ज़ किए जाते हैं। तालिका 6.1 के पहले दो इकाई में वस्तु के आयात और निर्यात को दर्ज किया गया है। तीसरे इकाई में व्यापार संतुलन दिया गया है, जिसे वस्तु के निर्यात को आयात में से घटाकर प्राप्त किया जाता है। जब निर्यात आयात से अधिक होता है तो **व्यापार आधिक्य** होता है और जब आयात निर्यात से अधिक होता है तो **व्यापार घाटा** होता है। वर्ष 2006-07 में, आयात निर्यात से अधिक होने के कारण भारत को 63.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर का बहुत बड़ा व्यापार घाटा हुआ है। सेवाओं का व्यापार जिसे अदृश्य व्यापार कहा जाता है (क्योंकि उसे राष्ट्रीय सीमाओं को पार करते नहीं देखा जाता है) में उपदान आय (कर्मचारियों का मुआवजा और निवल निवेश आय बाद में ब्याज के बराबर हो जाता है-निवेश आय जैसे– विदेशों में हमारी परिसंपत्तियों पर ब्याज, लाभ और लाभांश में से भारत में विदेशियों की परिसंपत्तियों से उनकी आय घटाने पर) और गैर-उपदान आय (जहाज़रानी, बैंकिंग, बीमा, पर्यटन, सॉफ्टवेयर सेवाएँ, इत्यादि) आते हैं। अंतरण-अदायगी ऐसी प्राप्तियाँ होती हैं, जो किसी देश के निवासियों को 'निःशुल्क' प्राप्त होती है और उनके बदले में उन्हें वर्तमान में या भविष्य में

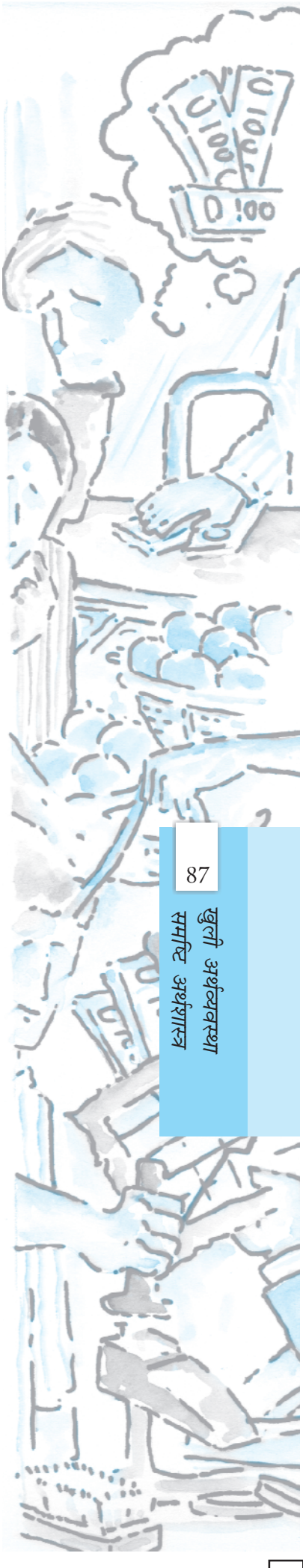

कोई अदायगी नहीं करनी पड़ती है। उनमें प्रेषित धन, उपहार और अनुदान शामिल हैं। वे सरकारी अथवा निजी हो सकते हैं। वस्तुओं के निर्यात और आयात के संतुलन को *व्यापार संतुलन* कहते हैं। व्यापार संतुलन में सेवाओं का व्यापार और शुद्ध अंतरण का योग कर हम *चालू खाता संतुलन* प्राप्त करते हैं। **चालू खाता संतुलन**, तालिका 6.1 के 5वें क्रम पर दिखाया गया है। इन आँकड़ों का तात्पर्य है कि चालू खाते के घटकों से संव्यवहार के कारण आई हुई प्राप्तियों से 9.8 बिलियन डॉलर अधिक का प्रवाह अदायगी के रूप में हुआ है। इसे **चालू खाता घाटा** के रूप में जाना जाता है एवं वर्ष 2006-07 में सकल घरेलू उत्पाद का 1.1 प्रतिशत था। यदि ये आँकड़े घनात्मक संख्याओं में होते तो **चालू खाता आधिक्य** माना जाता। पूँजी खातों में परिसंपत्तियों जैसे- मुद्रा, स्टॉक, बंधपत्र आदि के सभी प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय क्रय-विक्रय का विवरण होता है। विदेशियों को जिस किसी भी प्रकार के अंतरण द्वारा अदायगी की जाती है, उसे *डेबिट* में दर्ज़ करते हैं और उसे ऋणात्मक चिह्न दिया जाता है। कोई भी अंतरण जो विदेशियों से प्राप्ति के रूप में प्रविष्ट करते हैं, उसे *क्रेडिट* में दर्ज़ करते हैं और उसे धनात्मक चिह्न दिया जाता है।

उदाहरण 6.1

क्या किसी देश में व्यापार घाटा और चालू खाता आधिक्य एक साथ हो सकता है? हाँ। यद्यपि, भारत में व्यापार घाटा प्रतिवर्ष होना एक आवर्ती विशेषता है, तीन लगातार वर्षों के लिए 2001-02 से 2003-04 तक, चालू खाते पर आधिक्य क्रमशः सकल घरेलू उत्पाद के 0.7, 1.3 और 2.3 प्रतिशत के अनुरूप था। यह इसलिए है क्योंकि सेवाओं और निजी अंतरण से अर्जन व्यापार घाटा से अधिक प्रभावशाली है।

6.1.1 अदायगी-संतुलन आधिक्य और घाटा

अंतर्राष्ट्रीय अदायगी का सार है कि जिस प्रकार अपनी आय से अधिक व्यय करने वाले को किसी व्यक्ति को परिसंपत्तियाँ बेचकर या उधार लेकर आय-व्यय के अंतर को पूरा करना पड़ता है, उसी प्रकार कोई देश, जिसके चालू खाते में घाटा होता है (जो विदेशों को विक्रय से प्राप्त धन से अधिक विदेशों को व्यय करता है) उसे अपनी परिसंपत्ति बेचकर या विदेशों से ऋण लेकर उस कमी के लिए वित्त की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार, किसी भी चालू खाता घाटा को निवल पूँजीगत प्रवाह से *वित्तपोषित* करना आवश्यक होता है।

वैकल्पिक रूप से घाटे की दशा में विदेशी विनिमय बाज़ार में विदेशी करेंसी को बेचकर तथा अपने विदेशी विनिमय को कम करके कोई देश ***अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार*** का कार्य कर सकता है। अधिकृत आरक्षित निधि में कमी (वृद्धि) को कुल **अदायगी-घाटा संतुलन (आधिक्य)** कहते हैं। यहाँ मुख्य बात यह है कि अदायगी-संतुलन (अथवा किसी आधिक्य का प्रापक) में किसी प्रकार के घाटे का प्रधान वित्तदाता मौद्रिक प्राधिकार होते हैं। अदायगी संतुलन घाटा या आधिक्य चालू और पूँजीगत खाता संतुलन के जोड़ने के बाद प्राप्त होता है। वर्ष 2006-07 में अदायगी संतुलन आधिक्य 36.6 बिलियन अमेरिकी डॉलर था जो तालिका 6.1 में क्रम संख्या 12 में दिखाया गया है। यह राशि सकल घरेलू उत्पाद का 4 प्रतिशत संग्रहीत है और अधिकृत आरक्षित निधि में जुड़ जाती है। कोई देश अदायगी-संतुलन में तब होता है, जब उसके चालू खाते का योग और उसके अनारक्षित पूँजी खाते का योग शून्य के बराबर हो, ताकि चालू खाता शेष का बिना किसी आरक्षित निधि संचलन के पूर्णतः अंतर्राष्ट्रीय ऋण के द्वारा वित्त प्रबंध किया जा सके। ध्यातव्य है कि अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार अधिकीलित विनिमय दर की तुलना में अस्थायी विनिमय दर की स्थिति में अधिक प्रासंगिक होता है।

स्वायत्त और समायोजित संव्यवहार: अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संव्यवहार जब उदाहरण के लिए लाभ के उद्देश्य से अदायगी-संतुलन को छोड़कर स्वतंत्र रूप से राज्य के द्वारा किया जाता है, तो वैसे संव्यवहार को *स्वायत्त* कहते हैं। इन मदों को अदायगी-संतुलन में 'रेखा के ऊपर' की मदें कहते हैं। जब स्वायत्त प्राप्तियाँ स्वायत्त अदायगी से अधिक (कम) हो, तो अदायगी-संतुलन को आधिक्य या घाटा में कहा जाता है। इसके विपरीत *समायोजित* संव्यवहार ('रेखाओं के नीचे' की मदों) का निर्धारण स्वायत्त के निवल परिणामों के द्वारा होता है, चाहे अदायगी-संतुलन आधिक्य में हो या घाटे में हो। अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार को अदायगी-संतुलन में समायोजित मदों के रूप में देखा जाता है (अन्य सभी स्वायत्त हों)।

त्रुटि और लोप: अदायगी-संतुलन (चालू और पूँजीखाते के अतिरिक्त) में तीसरे अवयव की रचना करता है जो 'संतुलित करने वाली मद' कहलाती है। यह हमारी अंतर्राष्ट्रीय संव्यवहार को शुद्धतापूर्वक दर्ज़ नहीं करने की अयोग्यता को प्रतिबिंबित करती है।

6.2 विदेशी विनिमय बाज़ार

अंतर्राष्ट्रीय संव्यवहार पर समस्त विचार करने के बाद हम किसी एकल संव्यवहार की चर्चा करें। कल्पना कीजिए कि एक भारतीय निवासी छुट्टी बिताने के लिए लंदन की यात्रा (पर्यटन सेवा का आयात) पर जाना चाहता है। लंदन में ठहरने के लिए उसे पौंड में भुगतान करना होगा। उसे इस जानकारी की आवश्यकता होगी कि पौंड *कहाँ* से और *किस कीमत* पर प्राप्त किया जा सकता है। पौंड के लिए उसकी माँग से *विदेशी विनिमय* की माँग की रचना होती है, जिसकी पूर्ति *विदेशी विनिमय बाज़ार* में होती है– यह *विदेशी विनिमय बाज़ार* वह बाज़ार है, जहाँ राष्ट्रीय करेंसियों का एक-दूसरे के लिए व्यापार होता है। इस बाज़ार के मुख्य प्रतिभागी व्यावसायिक बैंक, विदेशी विनिमय दलाल और अन्य अधिकृत डीलर तथा मुद्रा प्राधिकारी होते हैं। यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि यद्यपि प्रतिभागियों के अपने व्यापार-केंद्र हो सकते हैं, फिर भी यह बाज़ार अपने-आप में विश्व-व्यापी होता है। यहाँ व्यापारिक-केंद्रों के बीच निकट और निरंतर संपर्क बना रहता है और प्रतिभागी एक से अधिक बाज़ार के साथ व्यापार करते हैं।

अपनी करेंसी का अमेरिकन डालर द्वारा विनिमय दर: दो करेंसियों को क्या हमेशा ऐसा रहना चाहिए? विचार कीजिए।

दूसरे देश की मुद्रा के रूप में प्रथम देश की मुद्रा की कीमत को *विनिमय* दर कहा जाता है। चूँकि दो करेंसियों के बीच एक प्रतिसाम्य की स्थिति होती है, इसलिए विनिमय दर को दो में से किसी भी प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। पहला, घरेलू मुद्रा के रूप में किसी विदेशी मुद्रा की एक इकाई क्रय में घरेलू मुद्रा की जितनी इकाइयों की आवश्यकता होती है, जैसे–रुपया और डॉलर की विनिमय दर 50 रु० है, इसका अर्थ यह है कि 1 डॉलर का क्रय करने के लिए 50 रु० की लागत आती है। दूसरे, घरेलू मुद्रा की एक इकाई का क्रय करने के लिए विदेशी करेंसी की लागत के रूप में। उपर्युक्त मामले में हम कहेंगे कि 1 रुपया खरीदने की लागत 2 सेंट होगी। यद्यपि अर्थशास्त्र में पहली परिभाषा ही अधिक प्रचलित व व्यावहारिक है। यह द्विपक्षीय सांकेतिक विनिमय दर है। द्वि-पक्षीय इस अर्थ में है कि यह विनिमय दर किसी एक मुद्रा के लिए दूसरी मुद्रा के रूप में कीमत होती है तथा सांकेतिक इसलिए क्योंकि ये मुद्रा के रूप में विनिमय दर अंकित करते हैं, जैसे प्रति डॉलर या प्रति पौंड कितने रुपये होते हैं?

हमारे उदाहरण में यदि कोई लंदन की यात्रा पर जाना चाहता है, तो उसे यह जानना आवश्यक है कि ब्रिटेन में वस्तुएँ अपने देश की वस्तुओं की तुलना में कितनी महँगी हैं। इसकी माप *वास्तविक विनिमय* दर से हो पाती है। देशी कीमत स्तर और विदेशी कीमत स्तर के बीच के अनुपात को वास्तविक विनिमय दर कहते हैं, जिसकी माप एक ही मुद्रा में की जाती है। इसे इस प्रकार परिभाषित किया जाता है :

$$\text{वास्तविक विनिमय दर} = \frac{eP_f}{P} \qquad (6.1)$$

यहाँ P देश का कीमत स्तर है और P_f विदेशी कीमत स्तर तथा e विदेशी (सांकेतिक विनिमय दर) की कीमत रुपये में है। यहाँ अंश से रुपयों में विदेशी कीमत प्रदर्शित होती है तथा हर से रुपयों में घरेलू कीमत स्तर प्रदर्शित होता है। इस प्रकार, वास्तविक विनिमय दर से वस्तुओं की घरेलू कीमत की तुलना में विदेशी वस्तुओं की कीमत का पता चलता है। यदि वास्तविक विनिमय दर एक के समान है, तो करेंसियों की *क्रय-शक्ति समता* में होती हैं। अर्थात् दोनों देशों में वस्तुओं की लागत समान मुद्रा में एक समान रहती है, *जब हम समान करेंसी से मापते हैं।* उदाहरण के लिए, यदि एक कलम की लागत संयुक्त राज्य में 4 डॉलर है और सांकेतिक विनिमय दर 50 रु॰ प्रति अमेरिकी डॉलर है, तो वास्तविक विनिमय दर 1 होने पर भारत में कलम की लागत 200 रु॰ (epf = 50 × 4) होगी। यदि वास्तविक विनिमय दर एक से अधिक है, तो अपने देश की तुलना में विदेश में वस्तुएँ अधिक महँगी होंगी। वास्तविक विनिमय दर का प्रयोग अक्सर किसी देश की *अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा* की माप के लिए किया जाता है।

चूँकि एक देश का संबंध कई देशों से होता है, इसलिए हम द्वि-पक्षीय दर नहीं बल्कि एकल दर के रूप में अन्य सभी करेंसियों की तुलना में अपने घरेलू मुद्रा के संचलन को देखना पसंद करेंगे। इसके लिए हम अन्य करेंसियों के विनिमय दर के लिए एक *सूची* रखना चाहेंगे। ठीक उसी तरह जैसे हम सामान्य रूप से वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन दर्शाने के लिए कीमत-सूची का प्रयोग करते हैं। इसकी गणना *सांकेतिक प्रभावी विनिमय* दर (एन.ई.ई.आर.) के आधार पर होती है जो एक बहु-पक्षीय दर है, जिससे विदेशी करेंसियों की प्रतिनिधि टोकरी की कीमत प्रदर्शित होती है। प्रत्येक मुद्रा की कीमत उस देश के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में (औसत आयात और निर्यात इसका संकेतक है) मुद्रा के महत्त्व से तय होती है। *वास्तविक प्रभावी विनिमय* दर (आर. ई.ई.आर.) की गणना उसके सभी व्यापारिक साझेदारों की वास्तविक विनिमय दरों के भारित औसत के रूप में की जाती है, जो कि विदेशी व्यापार में क्रमशः विभिन्न देशों के अंश का मान है। इसकी व्याख्या विदेशी वस्तुओं की दी हुई टोकरी की एक इकाई का क्रय करने के लिए आवश्यक घरेलू वस्तुओं की मात्रा के रूप में की जाती है।

6.2.1 विनिमय दर का निर्धारण

अब प्रश्न उठता है कि विदेशी विनिमय दरें[1] इस स्तर पर क्यों होती हैं? और किस कारण से इनमें संचालन होता है? विदेशी विनिमय दर के निर्धारण के आर्थिक सिद्धांत को समझने के लिए हमें उन प्रमुख विनिमय दर प्रणालियों[2] का अध्ययन करना होगा, जिससे अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली की विशेषता प्रदर्शित होती है। नियत-कीमत परिवर्तनीयता की प्रतिबद्धता प्रणाली से प्रतिबद्धता रहित प्रणाली की ओर चलन का दौर रहा है, जहाँ के निवासी घरेलू मुद्रा को विदेशी मुद्रा में परिवर्तित करने के लिए स्वतंत्र होते हैं किंतु उन्हें कीमत की गारंटी नहीं मिलती है।

[1]किन्हीं दो करेंसियों के बीच।

[2]विनिमय दर प्रणाली विनिमय दरों का निर्धारण करने वाले अंतर्राष्ट्रीय नियमों का समुच्चय।

6.2.2 नम्य विनिमय दरें

नम्य विनिमय दर प्रणाली (जिसे तिरती विनिमय दर भी कहते हैं) में विनिमय दर का निर्धारण बाज़ार माँग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। पूर्णरूपेण नम्य प्रणाली में केंद्रीय बैंक नियमों के सरल समुच्चय को अपनाते हैं। बैंक विनिमय दर स्तर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाला कोई भी कार्य नहीं करता है। वह विदेशी विनिमय बाज़ार में *दखल* नहीं देता है (इसलिए कोई अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार नहीं होता है)। हम देश के निवासियों द्वारा विदेशी वस्तुओं, सेवाओं और परिसंपत्तियों पर किये गए सभी प्रकार के व्यय और सभी प्रकार की विदेशी अंतरण-अदायगी (अदायगी-संतुलन खातों में डेबिट) जिससे विदेशी विनिमय की माँग का भी पता चलता है, का उल्लेख करने पर अदायगी-संतुलन खाता और विदेशी विनिमय बाज़ार संव्यवहार के बीच संबंध स्पष्ट होता है। एक भारतीय निवासी जापानी कार खरीदने के लिए रुपये में भुगतान करेगा, लेकिन जापानी निर्यातकर्त्ता येन में भुगतान पाने की अपेक्षा करेगा। अत: विदेशी विनिमय बाज़ार में येन के रूप में रुपये का विनिमय होगा। इसके विपरीत, देश के निवासियों द्वारा किये गए सभी प्रकार के निर्यात से विदेशी विनिमय की समान आय प्रतिबिंबित होती है। उदाहरण के लिए, भारतीय निर्यातकर्त्ता रुपयों में भुगतान की अपेक्षा करेगा और हमारी वस्तुएँ खरीदने के लिए विदेशी लोग अपनी मुद्रा बेचकर रुपये खरीदेंगे। अदायगी-संतुलन खातों की कुल क्रेडिट तब विदेशी विनिमय की पूर्ति के समान हो जाता है। विदेशी विनिमय की माँग का दूसरा कारण सट्टेबाजी का प्रयोजन भी है।

सरलता की दृष्टि से हम कल्पना करें कि विश्व में भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका दो ही देश हैं, जिससे केवल एक विनिमय दर का निर्धारण हो। माँग वक्र DD की प्रवणता नीचे की ओर है क्योंकि विदेशी विनिमय की कीमत में वृद्धि से विदेशी वस्तुएँ खरीदने की रुपये के रूप में लागत में वृद्धि होगी। इस प्रकार, आयात में कमी आएगी और विदेशी विनिमय की माँग कम होगी। विदेशी विनिमय की पूर्ति में वृद्धि करने के लिए जब भी विनिमय दर में वृद्धि होती है, तब हमारे निर्यात के लिए विदेशी माँग अवश्य ही *इकाई लोच* से अधिक होनी चाहिए अर्थात् विनिमय दर में एक प्रतिशत की वृद्धि (जिसके परिणामस्वरूप विदेशों को निर्यात की जानेवाली हमारी वस्तुओं की कीमत में 1 प्रतिशत की कमी आती है) से माँग में 1 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि होनी चाहिए। यदि यह शर्त पूरी होती है, तो विनिमय में वृद्धि के अनुपात में रुपयों में हमारे निर्यात में वृद्धि होगी और विनिमय दर में वृद्धि से डॉलर के रूप में अर्जन (विदेशी विनिमय की पूर्ति) भी बढ़ेगी। किंतु उर्ध्वस्तर पूर्ति वक्र (भारतीय निर्यात के लिए विदेशी माँग की इकाई लोच) से इस विश्लेषण में कोई परिवर्तन नहीं होगा। ध्यातव्य है कि यहाँ हम विनिमय दर के अतिरिक्त सभी कीमतों को स्थिर रख रहे हैं।

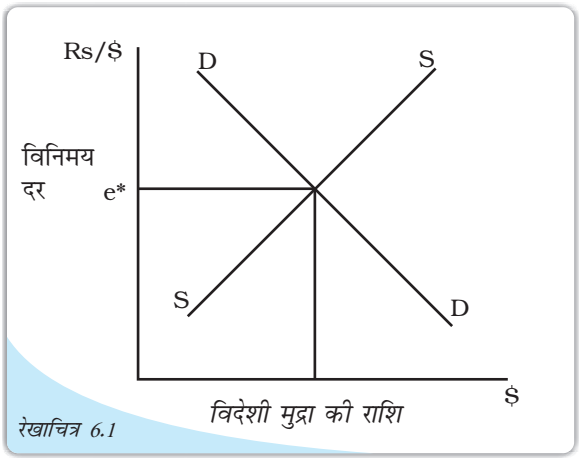

रेखाचित्र 6.1

नम्य विनिमय दर के अंतर्गत संतुलन

नम्य विनिमय दर की इस स्थिति में केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के बिना विदेशी विनिमय की

माँग और पूर्ति में साम्य स्थापित करने के लिए तथा बाज़ार रिक्त करने के लिए विनिमय दर में संचलन होता है। रेखाचित्र 6.1 संतुलन विनिमय दर e^* है।

यदि भारतीय निवासियों के अक्सर विदेशी यात्रा के कारण अथवा आयातित वस्तुओं के लिए उनके अधिमान के कारण विदेशी विनिमय में वृद्धि होगी, तो *DD* वक्र ऊपर की ओर और दायीं ओर शिफ्ट होगी। इस तरह परिणामी प्रतिच्छेदन बिंदु उच्च विनिमय दर पर रहेगा। नम्य विनिमय दर के अंतर्गत विदेशी विनिमय की कीमत में परिवर्तन मुद्रा के अवमूल्यन अथवा मूल्य वृद्धि को दर्शाती है। उपर्युक्त स्थिति में देश की घरेलू मुद्रा (रुपये) के मूल्य में *ह्रास हुआ है*, क्योंकि विदेशी मुद्रा की तुलना में इसके मूल्य में कमी आई है। उदाहरण के लिए, यदि रुपया-डॉलर विनिमय दर 45 रुपये पर साम्य की स्थिति में थी और अब वह 50 रु. प्रति डॉलर हो गई है तो डॉलर के विरुद्ध रुपये के मूल्य में ह्रास हुआ। इसके ठीक विपरीत, जब देश की घरेलू मुद्रा विदेशी मुद्रा की तुलना में अधिक व्ययशील हो, तो मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होती है।

प्रारंभिक संतुलन विनिमय दर e^* पर विदेशी विनिमय की अधिमाँग दिखाई गई है। बाज़ार को रिक्त करने के लिए विनिमय दर में संतुलन मूल्य e_1 तक वृद्धि अवश्य होगी। विनिमय दर में वृद्धि (मूल्यह्रास) से आयात की माँग में कमी आएगी, क्योंकि आयातित वस्तुओं की रुपयों में कीमत अधिक होगी। चूँकि विनिमय दर में वृद्धि से विदेशों को निर्यात पर कम व्यय होगा, इसलिए निर्यात की माँग में वृद्धि होगी। नये संतुलन e_1 पर विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति पुनः संतुलन की स्थिति में होगी।

सट्टेबाज़ी: बाज़ार में विनिमय दर केवल निर्यात और आयात की माँग एवं पूर्ति तथा परिसंपत्तियों में निवेश पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि विदेशी विनिमय के सट्टे पर भी निर्भर करती है, जहाँ विदेशी विनिमय की माँग मुद्रा की मूल्य वृद्धि से प्राप्त संभावित लाभ के लिए की जाती है। किसी भी देश की मुद्रा एक प्रकार की परिसंपत्ति है। यदि भारतीयों को यह विश्वास हो कि ब्रिटिश पौंड के मूल्य में रुपये की अपेक्षा वृद्धि होने की संभावना है, तो वे पौंड को अपने पास रखना चाहेंगे। उदाहरण के लिए, यदि चालू विनिमय दर 80 रुपये प्रति पौंड है और निवेशकर्ताओं को यह विश्वास है कि माह के अंत तक पौंड के मूल्य में वृद्धि होने की संभावना है तथा यह 85 रु॰ प्रति पौंड तक हो सकता है, तो निवेशकर्ता यह सोचेंगे कि यदि वह 80,000 रुपये लगाकर 1000 पौंड खरीदेगा तो माह के अंत में वह उसे 85,000 रु॰ में बेचकर 5,000 रु॰ का लाभ अर्जित कर लेगा। इस परिकल्पना से पौंड की माँग बढ़ेगी और इससे रुपया पौंड विनिमय दर में वर्तमान में वृद्धि होगी, जिससे उसके विश्वास की स्वतः पूर्ति हो जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि ब्याज की दर, आय और कीमत स्थिर रहती है। किंतु इनमें परिवर्तन हो सकता है और इससे विदेशी विनिमय के माँग और पूर्ति वक्र शिफ्ट होंगे।

ब्याज की दरें और विनिमय दर: अल्पकाल में विनिमय दर के निर्धारण में एक दूसरा कारक भी महत्त्वपूर्ण होता है, जिसे *ब्याज दर विभेदक* कहते हैं। अर्थात देशों के बीच ब्याज की दरों में अंतर है। बैंक, बहुराष्ट्रीय निगम और धनी व्यक्ति, विशाल निधि के स्वामी होते हैं जिसका अधिक आय प्राप्त करने के लिए ऊँची ब्याज दर की खोज में पूरे विश्व में संचलन होता है। यदि हम कल्पना करें कि एक देश A में सरकारी बंधपत्र पर ब्याज की दर 8 प्रतिशत है जबकि उसी के समान सुरक्षित बंधपत्र पर दूसरे देश B में 10 प्रतिशत की आय होती है, तो ब्याज दर विभेदक 2 प्रतिशत होगा। देश A का निवेशकर्त्ता देश B की उच्च ब्याज दर की ओर आकर्षित होंगे और अपने देश की मुद्रा को बेचकर देश B की मुद्रा का क्रय करेंगे। इस स्थिति में, देश B के निवेशकर्ता भी अपने देश में निवेश करना चाहेंगे और इस प्रकार देश A की करेंसी की कम माँग

करेंगे। इसका अर्थ यह है कि देश A की करेंसी का माँग वक्र बायीं ओर तथा पूर्ति वक्र दायीं ओर शिफ्ट होगा। इससे देश A की मुद्रा के मूल्य में ह्रास तथा देश B की मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होगी। अत: *किसी देश की आंतरिक ब्याज दर में वृद्धि से घरेलू मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होगी*। यहाँ यह मान लिया जाता है कि विदेशों की सरकारों के द्वारा बंधपत्रों के क्रय पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

आय और विनिमय दर: जब आय में वृद्धि होती है, तो उपभोक्ता के व्यय में भी वृद्धि होती है तथा आयातित वस्तुओं पर व्यय में भी वृद्धि की संभावना होती है। जब आयात बढ़ता है तो विदेशी विनिमय की माँग वक्र दायीं ओर शिफ्ट होती है। इससे घरेलू मुद्रा के मूल्य में ह्रास होता है। यदि विदेशी आय में भी वृद्धि होती है, तो घरेलू निर्यात में वृद्धि होगी जिससे विदेशी विनिमय का पूर्ति वक्र बाहर की ओर शिफ्ट होगा। संतुलन की स्थिति में घरेलू मुद्रा का मूल्य ह्रास हो भी सकता है और नहीं भी। यह सब इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या निर्यात आयात से अधिक तेज़ी से बढ़ रहे हैं। आमतौर पर, अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर एक देश जिसकी समस्त माँग शेष विश्व की तुलना में अधिक तेज़ी से बढ़ रही है, प्राय: उसकी मुद्रा के मूल्य में, निर्यात से आयात में अधिक वृद्धि के कारण ह्रास होता है। इसके विदेशी मुद्रा का माँग वक्र पूर्ति वक्र से अधिक तेज़ी से शिफ्ट होती है।

दीर्घकाल में विनिमय दर: दीर्घकाल में नम्य विनिमय दर प्रणाली में विनिमय दर के संबंध में पूर्वानुमान करने के लिए क्रय-शक्ति समता सिद्धांत का उपयोग किया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई व्यापारिक अवरोधक जैसे- टैरिफ (व्यापारिक कर) और कोटा (आयात की मात्रा की सीमा) नहीं होंगे, तो विनिमय दर स्वत: समायोजित हो जाएगी। इससे एक प्रकार के उत्पाद की लागत, चाहे भारत में रुपयों में या संयुक्त राज्य अमेरिका में डॉलर में अथवा जापान में येन में क्यों न हो, समान ही होगी। सिर्फ परिवहन व्यय में अंतर होगा। अत: दीर्घकाल में किन्हीं दो देशों की करेंसियों के बीच विनिमय दर के समायोजन से दोनों देशों के कीमत स्तर के अंतर का पता चलता है।

उदाहरण 6.1

यदि एक कमीज़ की लागत अमेरिका में 8 डॉलर और भारत में 400 रु॰ है, तो रुपया-डॉलर की विनिमय दर 50 रु॰ होगी। अब 50 रु॰ से अधिक किसी भी दर को देखने के लिए हम 60 रु॰ लेते हैं, इसका अर्थ यह है कि अमेरिका में एक कमीज़ की लागत 480 रु॰ और भारत में केवल 400 रु॰ है, तो ऐसी स्थिति में सभी विदेशी उपभोक्ता भारत से कमीज़ खरीदेंगे। इसी प्रकार, प्रति डॉलर 50 रु॰ से कम किसी भी विनिमय दर पर कमीज़ों का समस्त व्यापार अमेरिका के पास चला जाएगा।

अब हम कल्पना करते हैं कि भारत में कीमत में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है, जबकि अमेरिका में 50 प्रतिशत की वृद्धि होती है। अब भारत में एक कमीज़ की लागत 480 रु॰ जबकि अमेरिका में 12 डॉलर होगी। इन दोनों कीमतों में समानता तभी होगी, जब 12 डॉलर का मूल्य 480 रु॰ अथवा एक डॉलर का मूल्य 40 रु॰ होगा। अत: डॉलर के मूल्य में ह्रास हुआ। क्रय-शक्ति समता सिद्धांत के अनुसार घरेलू स्फीति और विदेशी स्फीति के बीच अंतर ही विनिमय दर के समायोजन का प्रमुख कारण है। *यदि एक देश में दूसरे देश की अपेक्षा स्फीति की दर अधिक है, तो इसकी विनिमय दर का ह्रास होगा।*

तथापि यह याद रहे कि यदि अमेरिका में कीमत भारत की अपेक्षा अधिक तेज़ी से वृद्धि हो तथा साथ ही साथ सभी देश भारतीय कमीज़ों को बाहर रखने के लिए टैरिफ अवरोधकों को बढ़ा दे, (लेकिन अमेरिकी कमीज़ों पर नहीं) तो डॉलर का मूल्यह्रास नहीं होगा। बहुत सारी ऐसी वस्तुएँ भी हैं, जिनका व्यापार नहीं किया जाता है और उनके लिए स्फीति दर का कोई प्रभाव नहीं होता। कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उत्पादन और व्यापार भिन्न-भिन्न देशों के द्वारा किया जाता है। वे

परस्पर समरूप और एक ही प्रकार की होती हैं। अधिकतर अर्थशास्त्री मानते हैं कि अल्पकाल में विनिमय दर के निर्धारण में सापेक्ष कीमतों की तुलना में अन्य कारक अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। किंतु दीर्घकाल में क्रय-शक्ति समता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

6.2.3 स्थिर विनिमय दरें

1970 के दशक के पूर्वार्द्ध में ब्रेटन वुड्स प्रणाली की समाप्ति के उपरांत प्रायः सभी देशों में नम्य विनिमय दर प्रणाली ही प्रचलित थी। इसके पूर्व अधिकांश देशों में स्थिर अथवा *अधिकीलित विनिमय दर प्रणाली* ही थी। इस प्रणाली में एक विशेष स्तर पर विनिमय दरें अधिकीलित होती हैं। कभी-कभी स्थिर विनिमय दर और अधिकीलित विनिमय दर में भेद किया जाता है। यह तर्क दिया जाता है कि स्थिर विनिमय दर *स्थिर* रहती है जबकि अधिकीलित विनिमय दर का निर्धारण व नियमन मौद्रिक प्राधिकरणों के द्वारा किया जाता है। जिस मूल्य पर विनिमय दर अधिकीलित (सममूल्य) की जाती है, उसे नीति परिवर्त कहते हैं; इसमें परिवर्तन हो सकता है। दोनों प्रणालियों में एक सामान्य तत्व है। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंतर्गत, जैसे स्वर्णमान में अदायगी-संतुलन आधिक्यों अथवा घाटों में समायोजन विनिमय दर में परिवर्तन के माध्यम से नहीं हो सकता है। समायोजन या तो स्वतः आर्थिक व्यवस्था के कार्यकरण के माध्यम से होगा (ह्यूम के द्वारा यांत्रिकी व्याख्या नीचे दी गयी है) अथवा सरकार के द्वारा किया जाएगा। अधिकीलित विनिमय दर प्रणाली में भी जब तक विनिमय दर में परिवर्तन न हो अथवा न ही परिवर्तन की आशा हो, तब तक वही विशेषताएँ दिखती हैं। यद्यपि सरकार के सामने एक दूसरा विकल्प खुला होता है कि वह विनिमय दर में परिवर्तन कर सकती है। अधिकीलित विनिमय दर प्रणाली में जब सरकार के द्वारा विनिमय दर में वृद्धि की जाती है, तो इसे मुद्रा का *अवमूल्यन* कहा जाता है। अवमूल्यन का विलोम *पुनर्मूल्यन* होता है अथवा सरकार विनिमय दर को अपरिवर्तित भी रख सकती है और मौद्रिक नीति तथा वित्तीय नीति का प्रयोग करके अदायगी-संतुलन की समस्या का समाधान कर सकती है। बहुत-सी सरकारें विनिमय दर में बार-बार परिवर्तन करती है। हम अपने विश्लेषण में स्थिर और अधिकीलित विनिमय दरों का उपयोग एक विनिमय दर व्यवस्था को सूचित करने के लिए एक-दूसरे के बदले करेंगे। इस विनिमय दर व्यवस्था में विनिमय दर का निर्धारण सरकार के निर्णयों के द्वारा तथा इसका नियमन सरकार के कार्यों के द्वारा होता है।

हम उस पद्धति का परीक्षण करेंगे, जिसमें कोई देश अपने विनिमय दर के स्तर को "अधिकीलित" व स्थिर करता है। हम कल्पना करते हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक रुपये का सममूल्य 45 रु० प्रति डॉलर स्थिर करना चाहता है (रेखाचित्र 6. 3 में e_1)। यह कल्पना करने पर कि यह अधिकृत विनिमय दर नम्य विनिमय दर प्रणाली की साम्य विनिमय दर (यहाँ है $e^* = 50$ रु०) से नीचे है, हम पाएँगे कि रुपये का अधिमूल्यन होगा और डॉलर का अवमूल्यन। इसका अर्थ यह है कि यदि विनिमय दर का बाज़ार में निर्धारण होता, तो बाज़ार को रिक्त करने के लिए रुपयों के रूप में डॉलर के मूल्य में वृद्धि होती।

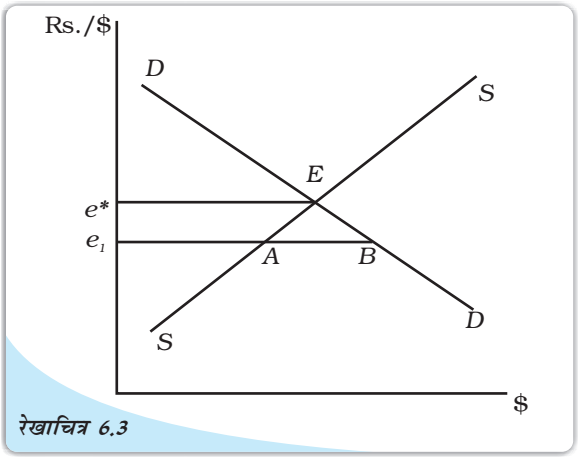

रेखाचित्र 6.3

अधिकीलित विनिमय दर के साथ विदेशी विनिमय बाज़ार

50 रुपये प्रति डॉलर की तुलना में 45 रुपये प्रति डॉलर की स्थिति में रुपया अधिक महँगा होगा (अब एक रुपये की कीमत 2 सेंट की जगह 2.22 सेंट है)। इस दर पर डॉलर की माँग उसकी पूर्ति से अधिक है। चूँकि माँग और पूर्ति अनुसूची की रचना अदायगी-संतुलन खातों (केवल स्वायत्त संव्यवहार को लेकर) से होती है, इसलिए इस अधिमाँग से अदायगी-संतुलन में घाटे का पता चलता है। घाटे की पूर्ति केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के द्वारा होती है। इस स्थिति में, भारतीय रिज़र्व बैंक इस अधिमाँग AB की पूर्ति के लिए विदेशी विनिमय बाज़ार में रुपयों के बदले डॉलर बेचता है। इस प्रकार, विनिमय दर के ऊपरी दबाव को निष्प्रभावी कर दिया जाता है। विनिमय दर में वृद्धि (जब कोई अधिक दर पर खरीदने के लिए तैयार नहीं होगा) या गिरावट (कीमत घटने पर कोई बेचना नहीं चाहेगा) को रोकने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक उस दर पर डॉलर का क्रय-विक्रय करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

अब भारतीय रिज़र्व बैंक अदायगी-संतुलन घाटे के कुछ अंश को पाटने के लिए विनिमय दर का निर्धारण ऊँचे स्तर पर 47 रु॰ प्रति डॉलर के रूप में कर सकता है। घरेलू मुद्रा के इस मूल्यह्रास से आयात महँगा तथा निर्यात सस्ता होगा और इससे व्यापार घाटा भी कम होगा। यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि वित्तीय घाटे की पूर्ति और विनिमय दर के निर्धारण में केंद्रीय बैंक के बार-बार हस्तक्षेप करने से तद्नुसार अधिकृत आरक्षित विदेशी मुद्रा समाप्त हो जाएगी। यह स्थिर विनिमय दर प्रणाली की सबसे बड़ी त्रुटि है। एक बार अनुमानकर्ताओं को यह विश्वास हो जाता है कि विनिमय दर दीर्घकाल तक बनी नहीं रहती, तो वे बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा (जो यहाँ डॉलर है) खरीदेंगे। डॉलर की माँग में वृद्धि से अदायगी-संतुलन घाटे में अधिक वृद्धि होगी। पर्याप्त आरक्षित विदेशी मुद्रा के अभाव में केंद्रीय बैंक विनिमय दर को अपने साम्य स्तर को प्राप्त करने देगा। इससे और अधिक अवमूल्यन हो सकता है जो कि घरेलू मुद्रा पर सट्टा आक्रमण के पूर्व आवश्यक अवमूल्यन से अधिक प्रभावी हो सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभव स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि इन्हीं त्रुटियों के कारण अनेक देशों को स्थिर विनिमय दर प्रणाली का परित्याग करना पड़ा। ऐसे ही आक्रमण के भय से अमेरिका ने 1971 में अपनी मुद्रा को तरणशील रहने दिया। यह एक बड़ी घटना थी, जिसके चलते ब्रेटन वुड्स प्रणाली का विखंडन हुआ।

6.2.4 प्रबंधित तिरती

किसी औपचारिक अंतर्राष्ट्रीय समझौते के बिना विश्व में उत्तम विनिमय प्रणाली का उदय हुआ, जिसे उत्तम रूप में प्रबंधित तिरती विनिमय दर प्रणाली कहा जा सकता है। यह नम्य विनिमय दर प्रणाली (तरितभाग) और स्थिर दर प्रणाली (प्रबंधित भाग) का मिश्रण है। *त्रुटिबहुल तिरती* नाम की इस प्रणाली में केंद्रीय बैंक विनिमय दर को उदार बनाने के लिए जब कभी ऐसे कार्य को समुचित समझता है, तब विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय करके हस्तक्षेप करता है। अतः अधिकृत सुरक्षित संव्यवहार शून्य के समान नहीं होता है।

6.2.5 विनिमय दर प्रबंधः अंतर्राष्ट्रीय अनुभव

स्वर्णमानः लगभग 1870 से 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के आरंभ होने तक स्वर्णमान ही प्रचलित था, जो कि स्थिर विनिमय दर प्रणाली का सार-तत्व ही था। सभी करेंसियाँ सोने के रूप में परिभाषित की जाती थी। वास्तव में, कुछ तो सोने की ही बनी थी। प्रत्येक सहभागी देश एक निश्चित कीमत पर अपनी मुद्रा को मुक्त रूप से परिवर्तनीयता की गारंटी देने के लिए प्रतिबद्ध था।

इसका अर्थ यह था कि प्रत्येक देश के निवासी अपने देश की घरेलू मुद्रा का दूसरी परिसंपत्ति (सोना) के रूप में एक निश्चित कीमत पर मुक्त रूप से परिवर्तन कर सकते थे और सोना अंतर्राष्ट्रीय अदायगी के रूप में स्वीकार्य था। इससे यह भी संभव हुआ कि एक निश्चित कीमत पर प्रत्येक देश की मुद्रा दूसरी किसी भी मुद्रा के रूप में परिवर्तन योग्य बन गई। विनिमय दरों का निर्धारण सोना के रूप में उस मुद्रा के मूल्य के द्वारा होता था (जहाँ सोने की ही मुद्रा होती थी, वहाँ उसकी वास्तविक सोने की मात्रा होती थी)। उदाहरण के लिए, मुद्रा A की एक इकाई का मूल्य एक ग्राम सोना था और मुद्रा B का मूल्य मुद्रा A के मूल्य का दुगुना होता था। आर्थिक एजेंट प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा B की एक इकाई को मुद्रा A की 2 इकाई के रूप में बदल सकता था। इसके लिए उन्हें पहले सोना खरीदने और उसे बेचने की आवश्यकता नहीं होती थी। दरों में एक ऊपरी सीमा और निचली सीमा के बीच उतार-चढ़ाव होता रहता था। इन सीमाओं का निर्धारण दोनों करेंसियों के निर्माण में आयी लागत के अंतर के द्वारा होता था जिनमें उनके द्रवण, प्रेषण और सिक्के की ढलाई की लागत शामिल थी। अधिकृत समता को बनाए रखने के लिए प्रत्येक देश[3] को सोने के पर्याप्त स्टॉक सुरक्षित रखने की आवश्यकता होती थी। स्वर्णमान की स्थिति में सारे देशों की विनिमय दर स्थायी थी।

अब प्रश्न यह उठता है कि अत्यधिक आयात करने पर क्या कोई अपने सोने के सारे स्टॉक को समाप्त नहीं कर देगा (अदायगी-संतुलन में घाटा होने पर)? वणिकवादीय[4] व्याख्या इस प्रकार थी कि जब तक राज्य टैरिफ, कोटा अथवा निर्यात पर उपदान के रूप में हस्तक्षेप नहीं करेगा, तब तक वह देश अपने सोने को समाप्त कर देगा और वह अत्यंत बुरी दुर्घटना को प्राप्त होगा। डेविड ह्यूम एक ख्याति प्राप्त दार्शनिक थे, जिन्होंने 1752 में इस मत का खंडन किया और बतलाया कि यदि सोने के भंडार में कमी हुई, तो सभी प्रकार की कीमतें और लागत भी अनुपातिक रूप से गिरेगी और इससे देश में किसी को भी बुरी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा। घरेलू वस्तुएँ सस्ती हो जाने से आयात घटेगा और निर्यात बढ़ेगा (यह वास्तविक विनिमय दर है, जिससे प्रतिस्पर्धा का निर्धारण होगा)। जिस देश से हम आायात कर रहे थे और सोने में उसको भुगतान कर रहे थे, उसको कीमतों और लागतों में वृद्धि का सामना करना पड़ेगा। अतः उनका महँगा निर्यात घटेगा और पहले वाले देश से सस्ती वस्तुओं का आयात बढ़ेगा। इस धातुवाह कीमत तंत्र (अठारहवीं शताब्दी में कीमती धातुओं को सोना-चाँदी भी कहते थे) का परिणाम आमतौर पर सोने की क्षति उठाकर अदायगी-संतुलन में सुधार लाना होता है और सापेक्षिक कीमत पर जब तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में साम्य की पुनर्स्थापना नहीं होती, तब तक प्रतिकूल व्यापार संतुलन वाले देश के अदायगी-संतुलन को अनुकूल व्यापार संतुलन वाले देश के अदायगी-संतुलन को समकक्ष लाता है। इस संतुलन से आगे शुद्ध सोने का प्रवाह नहीं होता है और आयात निर्यात संतुलन बना रहता है। बिना किसी टैरिफ और राज्य की कार्रवाई की आवश्यकता के, स्थायी तथा स्वयं सुधार संतुलन बना रहता है। इस प्रकार स्वचालित साम्य तंत्र के माध्यम से स्थिर विनिमय दर को कायम रखा जाता था।

स्वर्णमान को समय-समय पर कई संकटों का सामना करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप इसका विखंडन हो गया। इसके अतिरिक्त, विश्व में कीमत का स्तर सोने की खोज के वरदान पर निर्भर करता था। इसकी व्याख्या मुद्रा के अशोधित परिमाण सिद्धांत $M = kPY$ के आधार पर की जा सकती है। इस सिद्धांत के अनुसार, यदि उत्पादन (सकल घरेलू उत्पाद) में हर वर्ष 4 प्रतिशत की

[3] अगर दर में अंतर उन लेन-देन की लागतों से अधिक हो, तो लाभ मनमाने तरीके से हो सकता है- करेंसी को सस्ते दर पर क्रय करने तथा सहज ढंग से बेचने की प्रक्रिया में।

[4] वणिकवादी विचारधारा का जुड़ाव 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ हुआ।

दर से वृद्धि होती है, तो कीमत को स्थिर बनाए रखने के लिए हर वर्ष सोने की पूर्ति में 4 प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक होगी। खादानों से इतनी मात्रा में सोने का उत्पादन नहीं होने से 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूरे विश्व में कीमत स्तर में गिरावट आयी, जिससे समाज में असंतोष की भावना बढ़ गई। एक समय सोने के अनुरूपक के रूप में चाँदी का प्रयोग शुरू हुआ। इसे 'द्विधातुमान' कहा गया। सोने के व्यय को कम करने के लिए *खंड सुरक्षित बैंकिंग* से भी मदद मिली। कागज़ी मुद्रा को सोने का पूर्णत: समर्थन नहीं था। कुछ विशिष्ट देशों में ही एक चौथाई सोना कागज़ी मुद्रा के बदले रखा जाता था। सोने की खपत को कम करने की दूसरी पद्धति *स्वर्ण विनिमय मान* को कई देशों में स्वीकार किया गया। इस पद्धति में सोने के सापेक्ष स्थिर कीमत पर मुद्रा का विनिमय किया जाता है, लेकिन उसके लिए सोने की थोड़ी मात्रा अथवा कुछ भी मात्रा नहीं रखी जाती। सोने के बदले वे किसी बड़े देश (संयुक्त राज्य अथवा ब्रिटेन) की मुद्रा रखते थे, जो स्वर्णमान पर आधारित था। इनसे और क्लोंडिक तथा दक्षिण अफ्रीका में सोने की खोज से 1929 तक अवस्फीति को दूर रखने में मदद मिली। कुछ आर्थिक इतिहासकार इस तरलता की कमी के लिए महामंदी को उत्तरदायी मानते हैं। 1914-45 के मध्य किसी भी प्रकार की सार्वभौमिक प्रणाली नहीं रही, लेकिन इस अवधि में स्वर्णमान की ओर झुकाव और नम्य विनिमय दर दोनों का चलन रहा।

ब्रेटन वुड्स प्रणाली: 1944 में ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) और विश्व बैंक की स्थापना हुई तथा स्थिर विनिमय दर प्रणाली की भी पुनर्स्थापना की गई। परिसंपत्तियों के चयन के रूप में यह अंतर्राष्ट्रीय स्वर्णमान से भिन्न था, जिसमें राष्ट्रीय करेंसी को परिवर्तनीय बनाया गया। करेंसियों की परिवर्तनीयता की द्विस्तरीय प्रणाली की स्थापना की गई, जिसके केंद्र में डॉलर को रखा गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के मौद्रिक प्राधिकरणों के द्वारा 35 डॉलर प्रति आउंस सोना की निश्चित दर पर डॉलर के सोने में परिवर्तनीयता की गारंटी प्रदान की गई। इस प्रणाली के दूसरे स्तर में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रत्येक सदस्य देशों की मुद्रा प्राधिकरण के प्रति प्रतिबद्धता थी, जिसके अंतर्गत वे अपनी मुद्रा को एक निश्चित दर पर डॉलर में परिवर्तन करना चाहते थे। इस दूसरे स्तर को अधिकृत विनिमय दर कहा गया। उदाहरण के लिए, यदि फ्रांस की मुद्रा फ्रंक का 5 फ्रंक प्रति डॉलर के रूप में विनिमय किया जा सकता था और 35 डॉलर प्रति आउंस की दर से सोने का विनिमय डॉलर के रूप में किया जा सकता था, तो इस प्रकार फ्रंक का मूल्य 175 फ्रंक प्रति आउंस सोने की दर पर निर्धारित किया जाता था (5 फ्रंक प्रति डॉलर गुणा 35 डॉलर प्रति आउंस)।

विनिमय दर में परिवर्तन की अनुमति केवल देश के अदायगी-संतुलन में आधारभूत असंतुलन की स्थिति में ही दी जाती थी, जिसका अभिप्राय अदायगी-संतुलन में पर्याप्त अनुपात में चिरकालिक घाटे से है। ऐसी विस्तृत परिवर्तनीय पद्धति की आवश्यकता थी, क्योंकि विभिन्न देशों में सोने का आरक्षित भंडार एक समान नहीं था। अधिकृत सोने के आरक्षित भंडार का 70 प्रतिशत केवल संयुक्त राज्य अमेरिका के पास था। अत: अन्य करेंसियों की विश्वसनीय परिवर्तनीयता के लिए सोने के भंडार के पुनर्वितरण की आवश्यकता होती। इसके अतिरिक्त, यह विश्वास किया जाता था कि अंतर्राष्ट्रीय तरलता की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए विद्यमान स्वर्ण भंडार अपर्याप्त था। स्वर्ण भंडार की रक्षा की एक विधि द्वि-स्तरीय परिवर्तन पद्धति थी, जिसमें प्रधान मुद्रा का परिवर्तन सोना में और अन्य करेंसियों का परिवर्तन प्रधान मुद्रा के रूप में होता था।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् युद्ध से विनष्ट देशों के पुनर्निमाण के लिए अत्यधिक संसाधन की आवश्यकता थी। आयात में वृद्धि हुई और घाटे के वित्त पोषण के लिए आरक्षित निधि का उपयोग किया गया। ऐसे देशों में उस समय संयुक्त राज्य की करेंसी डॉलर का उपयोग शेष विश्व के देशों में आरक्षित निधि के रूप में होता था। संयुक्त राज्य में लगातार अदायगी-संतुलन घाटे के

परिणामस्वरूप उस आरक्षित निधि में वृद्धि हुई (अन्य देश अपनी मुद्रा और डॉलर के बीच परिवर्तनीयता को बनाए रखने की अपनी प्रतिबद्धता के कारण आरक्षित धन के रूप में डॉलर का संग्रह करना चाहते थे)।

अब समस्या यह थी कि यदि संयुक्त राज्य की अल्पकालिक डॉलर देयता में स्वर्ण भंडार के सापेक्ष वृद्धि निरंतर जारी रहती, तो उसकी स्थिर कीमत पर डॉलर के सोने में परिवर्तन की प्रतिबद्धता की विश्वसनीयता के प्रति विश्वास नहीं रह जाता। इस प्रकार, केंद्रीय बैंक के पास वर्तमान डॉलर के प्रतिधारित को सोने में परिवर्तन करने के लिए प्रचुर प्रोत्साहन होता और उससे संयुक्त राज्य को अपनी प्रतिबद्धता का परित्याग करने को बाध्य होना पड़ता। इसे ब्रेटन वुड्स पद्धति के मुख्य आलोचक राबर्ट ट्रिफिन के नाम से ट्रिफिन दुविधा कहा जाता है। ट्रिफिन ने सलाह दी कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को केंद्रीय बैंकों के 'जमा बैंकों' में बदल देना चाहिए और नई 'आरक्षित परिसंपत्ति' का सृजन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के नियंत्रण में करना चाहिए। 1967 में विशेष आहरण अधिकार (SDRs) के सृजन से सोना विस्थापित हो गया। अंतर्राष्ट्रीय आरक्षित स्टॉक में वृद्धि करने के आशय से विशेष आहरण अधिकार (SDRs) को अंतर्राष्ट्रीय करेंसी के रूप में, 'कागज़ी स्वर्ण' के रूप में भी जाना जाता है। सोने के रूप में परिभाषा में 35 (SDRs) को एक आउंस सोना (ब्रेटन वुड्स पद्धति की डॉलर-सोना की दर) के समान माना गया। 1974 से इसे कई बार पुनर्परिभाषित किया गया है। वर्तमान में प्रतिदिन इसकी गणना पाँच देशों (फ्रांस, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन और अमेरिका) की चार करेंसियों (यूरो, डॉलर, जापानी येन, पौंड, स्टर्लिंग) के डॉलर में मूल्य के भारित योग के रूप में होती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों के द्वारा आरक्षित मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय करेंसियों के विनिमय के लिए केंद्रीय बैंकों के मध्य भुगतान के साधन के रूप में इसका प्रयोग किए जाने से, इसे शक्ति प्राप्त होती है। विशेष आहरण अधिकार की मूल्य किस्त का वितरण सदस्य देशों के बीच निधि (कोटा का संबंध देश के आर्थिक महत्त्व से संबंधित था, जिसका संकेत उसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मूल्य से मिलता था) में उनके कोटे के अनुसार किया जाता था।

ब्रेटन वुड्स पद्धति के विखंडन के पहले अनेक घटनाएँ हुईं, जैसे-1967 में पौंड का अवमूल्यन, 1968 में डॉलर से सोने की ओर पलायन से द्वि-स्तरीय स्वर्ण बाज़ार (अधिकृत दर 35 डॉलर प्रति आउंस सोना थी और निजी दर का निर्धारण बाज़ार द्वारा होता था) का सृजन और अंत में अगस्त 1971 में ब्रिटेन ने माँग की कि अमेरिका अपने डॉलर की धारित निधि के स्वर्ण मूल्य की गारंटी दे। इससे अमेरिका ने डॉलर और सोने के बीच के संबंध का परित्याग करने का निर्णय लिया।

1971 में 'स्मिथसोनियन समझौते' से विनिमय दर में नई केंद्रीय दर से 2.5 प्रतिशत ऊपर या नीचे तक के संचलन की अनुमेय बैंड को विस्तार मिला। इससे यह आशा की गई कि घाटे वाले देशों पर दबाव कम होगा। यह केवल 14 वर्षों तक चला। विकसित बाज़ार अर्थव्यवस्था जिसका नेतृत्व यूनाइटेड किंगडम और बाद में स्विटजरलैंड और फिर जापान ने किया, में तिरती विनिमय दरों को 1970 के दशक में स्वीकार करना आरंभ हुआ। 1976 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुच्छेदों की पुनरावृत्ति से देशों को अपने करेंसियों की तिरती रखने अथवा उन्हें अधिकीलित करने की अनुमति मिली (एकल करेंसियों का समूह अथवा SDR अधिकीलित दर)। अधिकीलित दरों के लिए कोई नियम नहीं है और वस्तुतः तिरती दर और विनिमय दरों के पर्यवेक्षण के लिए भी कोई नियम नहीं है।

वर्तमान परिदृश्यः वर्तमान में अनेक देशों में स्थिर विनिमय दर हैं। कुछ देश अपनी करेंसियों को डॉलर में अधिकीलित करते हैं। जनवरी, 1999 में यूरोपीय मौद्रिक संघ के सृजन से संघ के सदस्यों की करेंसियों के बीच विनिमय दर स्थायी रूप से निर्धारित हुई और एक नई समान मुद्रा यूरो को जारी किया गया। इसे यूरोपीय केंद्रीय बैंक के प्रबंध में जारी किया गया। जनवरी, 2002 से

वास्तविक नोट और सिक्के चलाये गये। अब तक 25 में 12 यूरोपीय संघ के सदस्यों ने यूरो को अपनाया है। कुछ देशों ने अपनी मुद्रा को फ्रांस के फ्रंक में अधिकीलित किया है, इनमें प्राय: अफ्रीका की फ्रांसीसी कॉलोनियाँ हैं। अन्य देशों ने करेंसियों के समूह में अधिकीलित किया है, जिसमें उनके व्यापार की रचना प्रतिबिंबित होती है। प्राय: छोटे देश भी एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक सहभागी के सापेक्ष अपनी विनिमय दर निर्धारित करने का निर्णय लेते हैं। उदाहरण के लिए-अर्जेंटीना ने 1991 में मुद्रा बोर्ड प्रणाली अपनायी। इसके तहत स्थानीय मुद्रा (पेसो) और डॉलर के बीच कानून द्वारा विनिमय दर तय किया गया। केंद्रीय बैंक अपनी जारी सारी घरेलू मुद्रा और आरक्षित निधि के बदले पर्याप्त विदेशी मुद्रा अपने पास रखता है। ऐसी व्यवस्था में कोई देश अपनी इच्छा से मुद्रा की पूर्ति में विस्तार नहीं कर सकता है। यदि कोई घरेलू बैंकिग संकट (जब बैंक को घरेलू मुद्रा ग्रहण करने की ज़रूरत होती है) होता है, तो केंद्रीय बैंक अंतिम ऋण दाता नहीं बना रह सकता। किंतु, संकट के बाद अर्जेंटीना ने मुद्रा बोर्ड का परित्याग कर दिया और जनवरी, 2002 में अपनी मुद्रा को तिरती रहने दिया।

2000 में इक्वेडोर ने *डॉलरीकरण* की नयी व्यवस्था अपनायी और घरेलू मुद्रा को छोड़कर संयुक्त राज्य के डॉलर को स्वीकार किया। सारी कीमतें डॉलर में रखी गई और स्थानीय मुद्रा में लेन-देन बंद हो गया। यद्यपि अनिश्चितता और जोखिम से बचा जा सकता है, किंतु इक्वेडोर ने अपनी मुद्रा पूर्ति का नियंत्रण संयुक्त राज्य के केंद्रीय बैंक-फेंडरल रिज़र्व को दे दिया है और इस तरह वह संयुक्त राज्य की आर्थिक दशाओं पर आधारित होगा।

समस्त रूप से अब अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बहु-प्रणाली के रूप में चित्रित किया जा सकता है। अधिकांश विनिमय दरों में दिन-प्रतिदिन के आधार पर थोड़ा परिवर्तन होता है और बाज़ार की शक्तियाँ आमतौर पर मूल प्रवृत्ति को निर्धारित करती है। यहाँ तक कि जो भी विनिमय दर में अधिक स्थिरता की वकालत करते थे, वे भी यह प्रस्ताव रखा कि सामान्यत: सरकार को एक निश्चित परास के अंतर्गत दर निर्धारित करनी चाहिए, बजाय इसके शाब्दिक निर्धारण के। सोने की भूमिका का भी विलोपन हो गया है। इसके स्थान पर एक ऐसा निर्बाध बाज़ार, जिसमें सोने की कीमत का निर्धारण सोने की माँग तथा पूर्ति जो मुख्यत: ज्वेलरियों, औद्योगिक उपयोगकर्ताओं, दंत चिकित्सकों, सट्टोरिया तथा साधारण नागरिकों से होती है, जो कि ये मानते हैं कि स्वर्ण एक अच्छा मूल्य संग्रह हैं।

6.3 खुली अर्थव्यवस्था में आय का निर्धारण

उपभोक्ता एवं फर्मों को घरेलू उत्पादित वस्तुओं और विदेशी वस्तुओं का क्रय करने का विकल्प होता है, इसीलिए देशी वस्तुओं की घरेलू माँग और घरेलू वस्तुओं की माँग के बीच अंतर की आवश्यकता होती है।

6.3.1 खुली अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय का तादात्म्य

बंद अर्थव्यवस्था में **घरेलू वस्तुओं की माँग** के तीन स्रोत हैं–उपभोग (C), सरकारी खर्च (G), घरेलू निवेश (I)। इसे इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$Y = C + I + G \qquad (6.2)$$

खुली अर्थव्यवस्था में निर्यात *(X)* से घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की माँग के अतिरिक्त स्रोत की रचना होती है, जो विदेशों से आता है और इसलिए इसे समस्त माँग में जोड़ा जाना चाहिए। घरेलू बाज़ारों में आयात से पूरक पूर्ति होती है और इससे घरेलू माँग के उस भाग की रचना होती है, जिससे विदेशी वस्तुओं और सेवाओं की माँग पर असर होता है। अत: राष्ट्रीय आय, एक खुली अर्थव्यवस्था में तादात्म्य है:

$$Y + M = C + I + G + X \quad (6.3)$$

पुनर्गठन करने पर

$$Y = C + I + G + X - \mathrm{M} \quad (6.4)$$

या,

$$Y = C + I + G + NX \quad (6.5)$$

जहाँ NX **निवल निर्यात** (निर्यात-आयात) है। एक धनात्मक निवल निर्यात (निर्यात, आयात से ज़्यादा) से व्यापार अधिशेष और ऋणात्मक निवल निर्यात (आयात, निर्यात से ज़्यादा) से व्यापार घाटा सूचित होता है।

किसी खुली अर्थव्यवस्था में साम्य आय के निर्धारण में आयात और निर्यात की भूमिका की जाँच करने के लिए हम उसी प्रक्रिया को अपनाते हैं, जिस प्रक्रिया का प्रयोग हमने बंद अर्थव्यवस्था के मामले में किया। अर्थात् हम निवेश और सरकार के स्वायत्त व्यय को लेते हैं। इसके अतिरिक्त हमें आयात और निर्यात के निर्धारकों को भी स्पष्ट करने की आवश्कता होती है। आयात की माँग घरेलू आय (Y) और वास्तविक विनिमय दर (R) पर निर्भर करती है। उच्च आय होने पर अधिक आयात किया जाता है। वास्तविक विनिमय दर को घरेलू वस्तु के रूप में विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमत के रूप में परिभाषित किया जाता है। उच्च विनिमय दर से विदेशी वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक महँगी हो जाती हैं और इस प्रकार आयात की मात्रा में कमी आती है। अत: आय (Y) का आयात पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है और वास्तविक विनिमय दर (R) का ऋणात्मक। परिभाषा से एक देश का निर्यात दूसरे देश का आयात होता है। इस प्रकार, हमारे निर्यात से विदेशी आयात की रचना होती है। यह विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर पर निर्भर करेगा। विदेशी आय में वृद्धि से हमारी वस्तुओं की विदेशी माँग में वृद्धि होगी, जिससे अधिक निर्यात होगा। विनिमय दर (R) में वृद्धि से घरेलू वस्तु सस्ती होगी और हमारे निर्यात में वद्धि होगी। विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर का निर्यात पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, निर्यात और आयात घरेलू आय, विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर पर निर्भर करते हैं। हम कल्पना करते हैं कि कीमत स्तर और मौद्रिक विनिमय दर स्थिर है, तो वास्तविक विनिमय दर भी स्थिर होगी। हमारे देश के मामले में विदेशी आय और इसलिए निर्यात को बहिर्जात ($X =$) समझा जाता है। इस प्रकार आयात की माँग आय पर निर्भर मानी जाती है और इसका एक स्वायत्त घटक होता है।

$M =$ $+ mY$ जहाँ > 0 स्वायत्त घटक है $0 < m < 1$। (6.6)

यहाँ m आयात की सीमांत प्रवृत्ति है। आय का एक अतिरिक्त रुपया आयात पर खर्च करने से प्राप्त अनुपात है। यह सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के सादृश्य होता है।

साम्य आय इस प्रकार होगा–

$$Y = \quad + c(Y - T) + \quad + \quad + \quad - \quad - mY \quad (6.7)$$

स्वायत्त घटकों को के रूप में एक साथ लेने पर प्राप्त होता है,

$$Y = \quad + cY - mY \quad (6.8)$$

या, $$(1 - c + m)Y = \quad (6.9)$$

या, $$Y^* = \quad (6.10)$$

आय व्यय ढाँचे में विदेशी व्यापार की अनुमति के प्रभाव की परीक्षा करने के क्रम में हमें बंद

अर्थव्यवस्था के मॉडल में साम्य आय के लिए समतुल्य अभिव्यक्ति के समीकरण (6.10) की तुलना करनी होगी। दोनों समीकरणों में साम्य आय को दो पदों, स्वायत्त व्यय गुणक और स्वायत्त व्यय स्तरों के गुणनफल के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। हम यह विचार करें कि खुली अर्थव्यवस्था के संदर्भ में इनमें से प्रत्येक में कैसे परिवर्तन होता है।

क्योंकि आयात की सीमांत प्रवृत्ति शून्य से अधिक होती है, इसलिए खुली अर्थव्यवस्था में हमें छोटा गुणक प्राप्त होता है। इसे निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है:

$$\text{खुली अर्थव्यवस्था गुणक} = \frac{\Delta Y}{\Delta \bar{A}} = \qquad (6.11)$$

उदाहरण 6.2

यदि $c = 0.8$ और $m = 0.3$, तो बंद और खुली अर्थव्यवस्था गुणक क्रमशः इस प्रकार प्राप्त होगा,

$$= \qquad = \qquad = 5 \qquad (6.12)$$

और $$= \qquad = \frac{1}{0.5} = 2 \qquad (6.13)$$

घरेलू स्वायत्त माँग में यदि 100 की वृद्धि हो, तो बंद अर्थव्यवस्था में निर्गत में 500 की वृद्धि होगी जबकि खुली अर्थव्यवस्था में केवल 200 की।

अर्थव्यवस्था को खोलने से स्वायत्त व्यय गुणक के मूल्य में गिरावट की व्याख्या हम गुणक प्रक्रम के अपनी पूर्व चर्चा के आधार पर कर सकते हैं (अध्याय-4)। उदाहरण के लिए, स्वायत्त व्यय में परिवर्तन और सरकारी व्यय में परिवर्तन का आय पर प्रत्यक्ष प्रभाव और उपभोग पर प्रेरित प्रभाव पड़ेगा, जिससे पुनः आय प्रभावित होगी। *सीमांत उपभोग प्रवृत्ति* के शून्य से अधिक होने पर उपभोग पर प्रेरित प्रभाव के अनुपात से *विदेशी* वस्तुओं की माँग का सूचक होगा, न कि घरेलू वस्तुओं की। अतः घरेलू वस्तुओं की माँग तथा घरेलू आय पर प्रेरित प्रभाव कम होगा। आय के प्रति इकाई आयात में वृद्धि से गुणक प्रक्रिया के प्रत्येक चक्र में घरेलू आय के वर्तुल प्रवाह से एक अतिरिक्त लीकेज होता है तथा स्वायत्त व्यय गुणक के मूल्य में कमी होती है।

समीकरण 6.10 में दूसरा पद दर्शाता है कि बंद अर्थव्यवस्था के लिए अवयवों के अतिरिक्त खुली अर्थव्यवस्था के लिए स्वायत्त व्यय में निर्यात का स्तर और आयात का स्वायत्त घटक शामिल होता है।

इस प्रकार, उनके स्तरों में परिवर्तन अतिरिक्त आघात होते हैं, जिससे संतुलित आय में परिवर्तन होते हैं। समीकरण 6.10 से हम और में परिवर्तन के गुणक प्रभाव का आकलन कर सकते हैं।

$$= \qquad (6.14)$$

$$(6.15)$$

हमारे निर्यात की माँग में वृद्धि से निर्गत के घरेलू उत्पादन की समस्त माँग में वृद्धि होती है और उससे माँग में वृद्धि होगी, साथ ही सरकारी खर्च अथवा निवेश में स्वायत्त वृद्धि होगी। इसके

विपरीत, आयात माँग स्वायत्त रूप से बढ़ने के कारण घरेलू निर्गत की माँग गिरेगी और इससे संतुलन आय में भी गिरावट होगी।

6.3.2 संतुलन निर्गत और व्यापार संतुलन

हम उपर्युक्त युक्तियों और व्यापार संतुलन पर पड़ने वाले अतिरिक्त प्रभाव की चित्रीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। जैसाकि हमने पहले देखा कि निवल निर्यात ($NX = X - M$) निर्भर करता है- Y, Y_f और R पर। Y के बढ़ने से आयात खर्च बढ़ता है और उससे व्यापार में घाटा (यदि हमारा आरंभिक व्यापार संतुलन $NX = 0$ हो) होता है। यदि अन्य बातें समान रहें तो Y_f में वृद्धि से हमारा निर्यात बढ़ता है, व्यापार आधिक्य होता है और समस्त आय में वृद्धि होती है। वास्तविक रूप से मूल्यह्रास निर्यातों को बढ़ायेगा, आयातों को घटाएगा और इस प्रकार निवल निर्यात में वृद्धि होगी।

रेखाचित्र 6.4 के ऊपरी पैनल में रेखा AD घरेलू माँग को बताती है, $C + I + G$ आय फलन को (अध्याय 5 के अंतरंग बंद अर्थव्यवस्था के संबंध)। हमारे मानक मान्यताओं के अंतर्गत इसकी प्रवणता धनात्मक है, किंतु एक से कम है। घरेलू वस्तुओं की माँग की प्राप्ति के लिए पहले हम रेखा AA प्राप्त कर आयात को घटाते हैं। AD और AA के बीच की दूरी आयात के मूल्य M के बराबर है। चूँकि आयात की मात्रा आय के साथ बढ़ती है, इसीलिए दोनों रेखाओं की दूरी भी आय के साथ बढ़ती जाती है। AD से AA अधिक सपाट है क्योंकि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, कुछ अतिरिक्त घरेलू माँग विदेशी वस्तुओं के लिए होती है। इस प्रकार, आय में वृद्धि से घरेलू वस्तुओं की घरेलू माँग कुल घरेलू माँग से कम बढ़ती है। दूसरा, हम निर्यात को जोड़कर DD रेखा प्राप्त करते हैं, जो AA के ऊपर है। DD और AA के बीच की दूरी निर्यात के बराबर है। यह स्थिर रहती है, क्योंकि निर्यात घरेलू आय (दोनों रेखाएँ समांतर है) पर निर्भर नहीं करता है। अब खुली अर्थव्यवस्था समस्त माँग वक्र DD बंद अर्थव्यवस्था माँग वक्र से अधिक सपाट है (क्योंकि AD से AA अधिक सपाट है)।

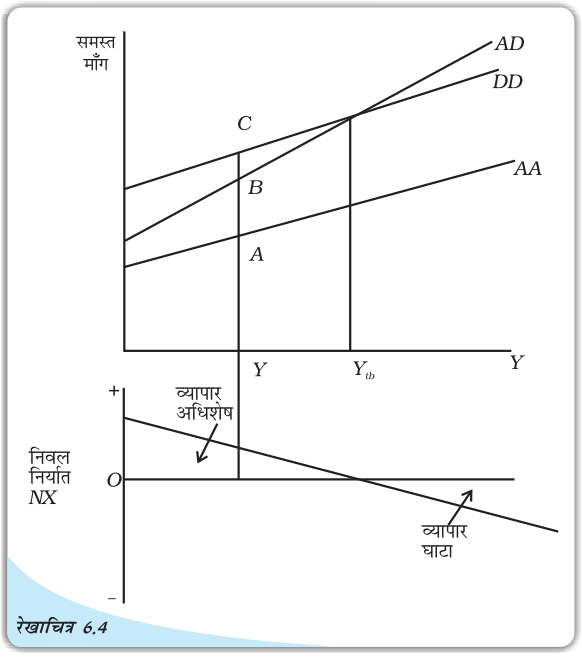

एक खुली अर्थव्यवस्था में समस्त माँग तथा निर्यात

रेखाचित्र 6.4 के निचले पैनल में हम निवल निर्यात NX के व्यवहार की परीक्षा आय फलन के रूप में करते हैं। उदाहरणार्थ, आय स्तर Y पर निर्यात को दूरी AC और आयात को दूरी AB से दर्शाया गया है, इसीलिए निवल निर्यात की दूरी BC से दर्शाया जाता है।

निवल निर्यात घरेलू आय का घटता हुआ फलन है। जब आय में वृद्धि होती है, आयात बढ़ता है और निर्यात अप्रभावित रहता है, जिससे कम निवल निर्यात होता है। आय के Y_{tb} ('tb' व्यापार संतुलन है) स्तर पर जहाँ आयात का मूल्य निर्यात के मूल्य के ठीक बराबर है, निवल निर्यात शून्य के बराबर है। Y_{tb} से ऊपर के आय स्तरों पर उच्च आयात होगा और इस प्रकार व्यापार घाटा होगा। Y_{tb} के नीचे के आय स्तरों पर निम्न आयात होगा और इस प्रकार व्यापार आधिक्य में रहेगा।

जब घरेलू निर्गत की पूर्ति घरेलू निर्गत की माँग के बराबर हो, तो वस्तु बाज़ार संतुलन में होता है। इसे रेखाचित्र 6.5 में बिंदु E पर DD रेखा के 45 अंश पर प्रतिच्छेदन से दर्शाया गया है।

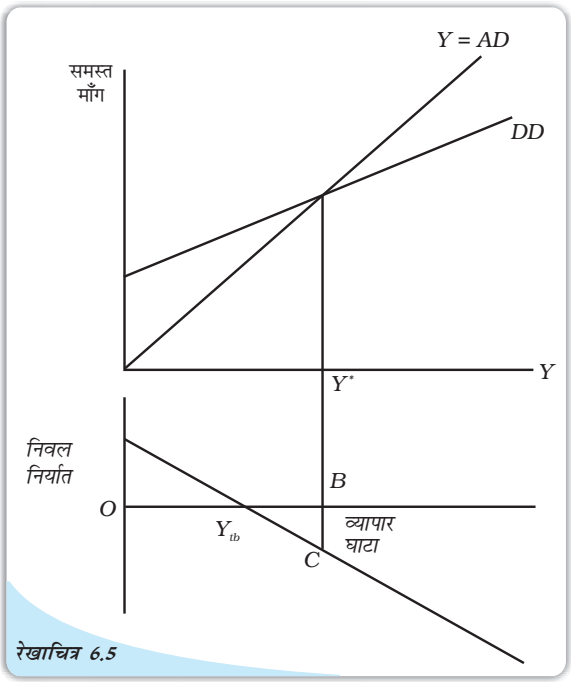

रेखाचित्र 6.5

संतुलित आय एवं निवल निर्यात

निर्गत Y के संतुलन स्तर का निर्गत के उसी स्तर पर, जिस पर व्यापार संतुलित है, Y_{tb} में ही होने का कोई कारण नहीं है। रेखाचित्र 6.5 में संतुलन निर्गत दूरी BC के बराबर व्यापार घाटा से जुड़ा है।

स्वायत्त व्यय में वृद्धि (मान लें, G) के प्रभावों की परीक्षा के लिए, हम एक ऐसी स्थिति की कल्पना करते हैं, जब आय Y के संतुलन स्तर पर व्यापार संतुलन की स्थिति में है, जिससे Y और Y_{tb} एक समान है। यदि सरकार अपने खर्च में वृद्धि करती है, तो समस्त माँग रेखा में DD से DD' तक संचलन होगा और संतुलन में E से E' तक संचलन होगा तथा आय में Y से Y' की वृद्धि होगी। निवल निर्यात अनुसूची में निर्गत के फलन में अधिक वृद्धि होती है, फलन के रूप में शिफ्ट नहीं होता है क्योंकि X अथवा M के संबंध में G प्रत्यक्षतः प्रवेश नहीं करता है। G में वृद्धि की तुलना में निर्गत में अधिक वृद्धि होती है। ऐसा गुणक प्रभाव के कारण होता है। यह बंद अर्थव्यवस्था की स्थिति जैसी है, केवल गुणक छोटा है। DD वक्र बंद अर्थव्यवस्था के AD वक्र से अधिक सपाट है।

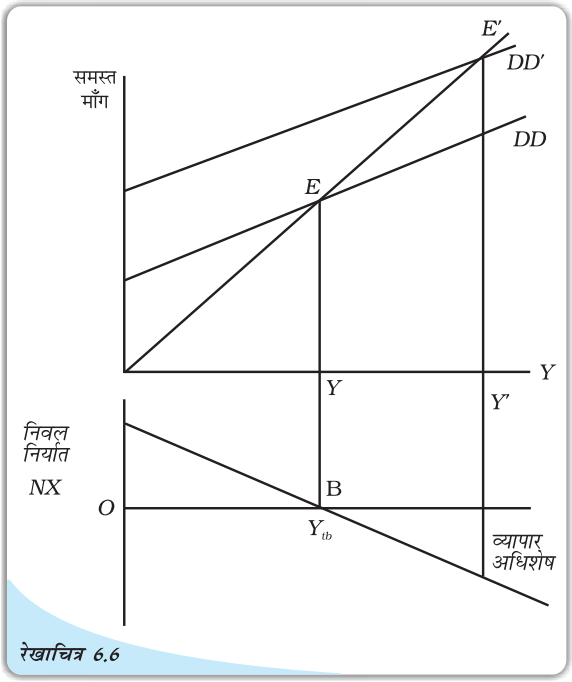

रेखाचित्र 6.6

उच्चतर सरकारी व्यय का प्रभाव

किंतु Y से Y' तक निर्गत में वृद्धि से व्यापार घाटा BC के बराबर हो जाता है। व्यापार घाटा और छोटा गुणक दोनों एक ही कारण से उत्पन्न होते हैं। अब माँग में वृद्धि का फलन केवल घरेलू वस्तुओं पर पड़ता है, बल्कि विदेशी वस्तुओं पर भी। जैसाकि पहले इसकी व्याख्या की जा चुकी है, इससे छोटा गुणक होता है। चूँकि कुछ वृद्धि आयात पर पड़ती है और निर्यात अपरिवर्तित रहता है, फलस्वरूप व्यापार घाटा होता है।

ये दोनों ही निहितार्थ महत्त्वपूर्ण हैं। अर्थव्यवस्था जितनी खुली होगी, आय पर उतना ही कम प्रभाव होगा और व्यापार शेष पर अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उदाहरणार्थ,

मान लीजिए कि किसी देश का आयात उसके सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 70 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि जब माँग में वृद्धि होती है तो इस 70 प्रतिशत की माँग वृद्धि से उच्च आयात होता है और केवल 30 प्रतिशत से ही घरेलू वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है। अतः G में वृद्धि से देश के व्यापार घाटे में अधिक वृद्धि होती है और निर्गत एवं आय में कम वृद्धि होती है। इस तरह घरेलू माँग में विस्तार देश के लिए एक अनाकर्षक नीति बन जाती है।

परस्पर निर्भर आय-विदेशी माँग में वृद्धिः हमने अब तक यह कल्पना की थी कि विदेशी आय, कीमतें और विनिमय दर अपरिवर्तित रहते हैं। पहले हम कीमत और विनिमय दर को स्थिर रखकर विदेशी आय Y_f में वृद्धि पर विचार करें। चित्र 6.7 में घरेलू वस्तुओं की प्रारंभिक माँग को DD से दर्शाया गया है। संतुलन निर्गत स्तर Y के साथ बिंदु E पर है। हम कल्पना करते हैं कि प्रारंभ में व्यापार संतुलित होता है तथा Y से जुड़ा निवल निर्यात शून्य के बराबर होता है।

जैसाकि रेखाचित्र 6.4 में उल्लिखित है कि रेखा AD, DD से अधिक प्रवण है और अंतर निवल निर्यात के बराबर है ताकि यदि E पर व्यापार संतुलित हो जाता है, तब E पर DD, AD को प्रतिच्छेद करे। Y_f में वृद्धि का सीधा प्रभाव निर्यात में वृद्धि है। देशी आय के दिए हुए स्तर के लिए, इससे घरेलू वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है, जिससे DD में DD' तक शिफ्ट होता है। आय के एक दिए हुए स्तर पर जब निर्यात में वृद्धि होती है, तब निवल निर्यात रेखा में भी NX' तक वृद्धि होती है। नया संतुलन बिंदु E' पर होता है और निवल निर्गत Y' स्तर का होता है। Y_f में वृद्धि से गुणक के माध्यम से घरेलू आय में वृद्धि होती है।

व्यापार शेष का क्या होता है? यदि Y में वृद्धि से आयात में अधिक वृद्धि होगी, तो व्यापार शेष घटेगा। किंतु ऐसा नहीं होता है। आय के नये स्तर पर घरेलू माँग को DE' से दर्शाया गया है। अतः निवल निर्यात को CE' से दर्शाया गया है, क्योंकि यह आवश्यक है कि AD, DD' के नीचे हो तथा धनात्मक हो। इस प्रकार, जब आयात बढ़ता है तो उससे निर्यात में वृद्धि पर कोई परिवर्तन नहीं होता है और व्यापार आधिक्य होता है। इसके विपरीत, विदेशों में मंदी घरेलू निर्यात को घटायेगी तथा इससे व्यापार घाटा होगा। अतः किसी देश में तेजी और मंदी की स्थिति होने से उसका संचरण वस्तुओं और सेवाओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से दूसरे देश को होता है।

कीमतों में परिवर्तनः अब हम विनिमय दर को स्थिर मान कर, कीमतों में परिवर्तन के प्रभावों पर विचार करें। यदि घरेलू उत्पादों की कीमतें गिरती हैं जबकि विदेशी कीमतें स्थिर रहती हैं, तो घरेलू निर्यात बढ़ेगा और समस्त माँग में वृद्धि होगी तथा इससे हमारे निर्गत और आय में भी वृद्धि होगी। इसके सादृश्य देश के निर्यात की कीमत में वृद्धि से देश का निवल निर्यात, निर्गत और आय में ह्रास होगा। इसी प्रकार, विदेशी कीमत में वृद्धि से विदेशी उत्पाद अधिक महँगे होंगे और इससे निवल निर्यात, घरेलू निर्गत और आय में पुनः वृद्धि होगी। विदेशों में कीमतों में कमी का विपरीत प्रभाव पड़ता है।

विनिमय दर परिवर्तनः मौद्रिक विनिमय दर में परिवर्तन से वास्तविक विनिमय दर में परिवर्तन होगा और इससे अंतर्राष्ट्रीय सापेक्ष कीमत में भी परिवर्तन होगा। रुपया का मूल्यह्रास होने से विदेशी वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाएँगी और घरेलू वस्तुएँ सस्ती हो जाएँगी। इससे निवल निर्यात बढ़ जाएगा, अतः समस्त माँग बढ़ जाएगी। इसके प्रतिकूल मुद्रा में मूल्यवृद्धि से निवल निर्यात में कटौती होगी, जिससे समस्त माँग में कमी होगी। किंतु, हमें यह याद रहे कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ढाँचे में विनिमय दरों में परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया करने में समय लगता है। निवल निर्यात की स्थिति में कोई सुधार देखने में आए, इसमें बहुत समय लग जाता है।

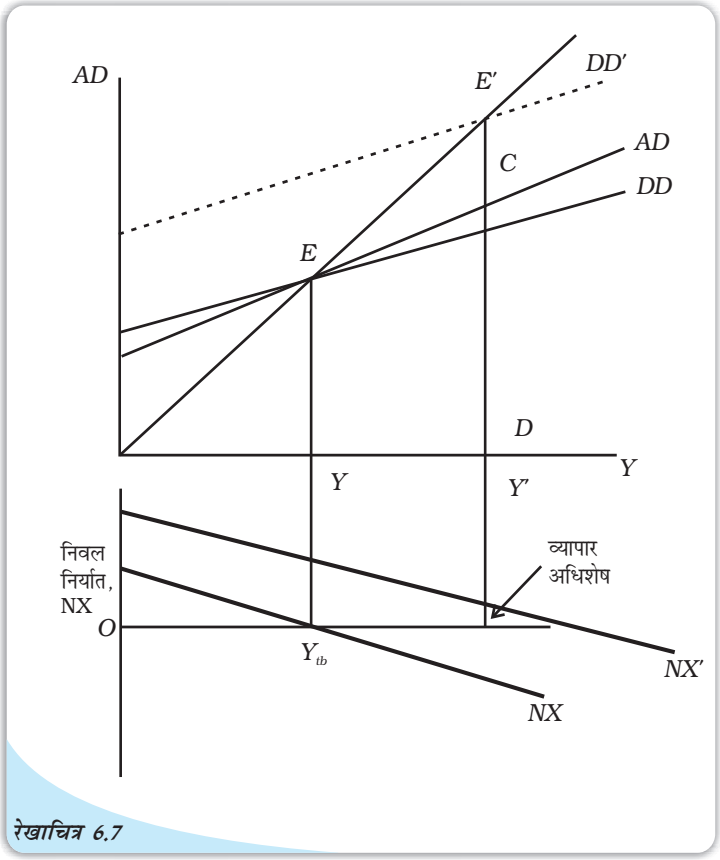

रेखाचित्र 6.7

उच्चतर विदेशी माँग का प्रभाव

6.4 व्यापार घाटा, बचत और निवेश

प्रश्न उठता है कि व्यापार घाटे से क्या खतरे का संकेत होता है? स्मरणीय है कि बंद अर्थव्यवस्था और खुली अर्थव्यवस्था के बीच जो महत्त्वपूर्ण अंतर है, वह यह है कि बंद अर्थव्यवस्था में बचत और निवेश हमेशा एक समान रहते हैं, जबकि खुली अर्थव्यवस्था में इनमें अंतर पाया जाता है।

समीकरण 6.5 से हम पाते हैं–

$$Y - C - G = I + NX \qquad (6.16)$$

अथवा

$$S = I + NX \qquad (6.17)$$

हम निजी बचत, S^p (प्रयोज्य आय का वह हिस्सा जो उपभोग के बजाए बचत की जाती है– $Y - T - C$) तथा सरकारी बचत; S^g (सरकार की आय, उसकी निवल कर आय–उसका उपभोग; सरकारी क्रय $T - G$) में भेद करते हैं। दोनों को राष्ट्रीय बचत में जोड़ा जाता है।

$$S = Y - C - G = (Y - T - C) + (T - G) = S^p + S^g \qquad (6.18)$$

समीकरण (6.16) और (6.17) से हम पाते हैं:

$$S = S^p + S^g = I + NX$$

अथवा

$$NX = (S^p - I) + S^g = (S^p - I) + (T - G) \qquad (6.19)$$

जब किसी देश में व्यापार घाटा[5] होता है, तो समीकरण (6.18) में दाहिनी तरफ देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि बचत में कमी हो रही है, निवेश में बढ़ोतरी हो रही है अथवा बजट घाटे में वृद्धि हो रही है। देश के दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य के बारे में चिंता का कारण तब होता है, जब व्यापार घाटे से बचत कम होती है और बजटीय घाटा अधिक होता है (जब अर्थव्यवस्था में व्यापार घाटा और बजटीय घाटा दोनों ही हों, तब उसे *दोहरा घाटा* कहा जाता है)। घाटे से उच्च निजी उपभोग अथवा सरकारी उपभोग प्रतिबिंबित होता है। इन स्थितियों में देश के पूँजी स्टॉक में तेजी से वृद्धि नहीं होगी, जिससे पर्याप्त संवृद्धि हो सके (जिसे 'संवृद्धि लाभांश' कहा जाता है) और ऋण की अदायगी की जा सके। परंतु यदि व्यापार घाटे से निवेश में वृद्धि प्रतिबिंबित हो, तो चिंता का कोई कारण नहीं होता क्योंकि इससे पूँजी स्टॉक का अधिक तीव्र गति से निर्माण होगा और भविष्य में निर्गत में वृद्धि होगी। किंतु यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि चूँकि निजी बचत, निवेश और व्यापार घाटा संयुक्त रूप से निर्धारित होते हैं, इसलिए अन्य कारकों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

सारांश

1. उत्पाद और वित्तीय बाज़ारों में खुलापन से घरेलू और विदेशी वस्तुओं के बीच तथा घरेलू और विदेशी परिसंपत्तियों के बीच चयन की छूट होती है।
2. अदायगी-संतुलन में किसी देश का शेष विश्व के साथ लेन-देन का उल्लेख होता है।
3. चालू लेखा शेष सौदा व्यापार, सेवाओं और शेष विश्व से प्राप्त निवल अंतरण का योग होता है। पूँजीगत लेखा शेष, विश्व में होने वाले पूँजीगत प्रवाह, शेष विश्व को होने वाले प्रवाह के घटाव के बराबर होता है।
4. चालू लेखा के घाटे को विदेशों से प्राप्त निवल पूँजी प्रवाह से वित्त पोषित किया जाता है, जिस प्रकार पूँजी खाता आधिक्य से।
5. मौद्रिक विनिमय दर घरेलू मुद्रा के रूप में विदेशी मुद्रा की एक इकाई की कीमत है।
6. वास्तविक विनिमय दर घरेलू वस्तु के रूप में विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमत है। यह मौद्रिक विनिमय दर के बराबर होती है, जो कि विदेशी कीमत स्तर में घरेलू कीमत स्तर से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में किसी देश की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का मूल्यांकन होता है। जब वास्तविक विनिमय दर एक के बराबर हो, तो दोनों देशों में क्रय-शक्ति समता होती है।

[5] यहाँ विश्लेषण को सरलीकृत करने के लिए हम अदृश्य तथा स्थानांतरित अदायगियों को नज़रअंदाज़ करते हुए चालू खाता संतुलन के साथ पर्याय व्यापार संतुलन को लेते हैं। जैसाकि तालिका 6.1 दर्शाता है, अदृश्य महत्त्वपूर्ण रूप से व्यापार घाटे को पाटने में मदद कर सकते हैं।

7. स्थिर विनिमय दर व्यवस्था का सार स्वर्णमान था, जिसमें प्रत्येक सहभागी देश एक निश्चित कीमत पर अपने देश की मुद्रा को स्वतंत्र रूप से स्वर्ण में परिवर्तित करने के लिए प्रतिबद्ध रहता था। अधिकीलित विनिमय दर एक प्रकार की परिवर्तनीय नीति है, जिसमें आधिकारिक कार्यवाही (अवमूल्यन) द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है।
8. स्वच्छ तिरती निधि के अंतर्गत विनिमय दर का निर्धारण बाज़ार द्वारा बिना किसी केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के होता है। प्रबंधित तिरती की स्थिति में केंद्रीय बैंक विनिमय दर में उतार-चढ़ाव को कम करने के लिए हस्तक्षेप करता है।
9. खुली अर्थव्यवस्था में घरेलू वस्तु की माँग, वस्तु की घरेलू माँग (उपभोग, निवेश, सरकारी खर्च) और निर्यात घटा आयात के योग के बराबर होता है।
10. खुली अर्थव्यवस्था गुणक बंद अर्थव्यवस्था गुणक से छोटा होता है, क्योंकि घरेलू माँग का एक हिस्सा विदेशी वस्तुओं के लिए होता है। अत: स्वायत्त माँग में वृद्धि से बंद अर्थव्यवस्था की तुलना में निर्गत में कम वृद्धि होती है। इससे: व्यापार शेष में भी गिरावट होती है।
11. विदेशी आय में वृद्धि से निर्यात में वृद्धि और घरेलू निर्गत में वृद्धि होती है तथा व्यापार शेष में सुधार होता है।
12. यदि किसी देश में ऋण की गई निधि से ब्याज दर की अपेक्षा विकास दर अधिक होता है, तो व्यापार घाटे से किसी प्रकार के खतरे का संकेत नहीं होता।

मूल संकल्पनाएँ

खुली अर्थव्यवस्था	अदायगी-संतुलन
चालू खातागत घाटा	आधिकारिक आरक्षित
लेन-देन	स्वायत्त और समंजन लेन-देन
मौद्रिक और वास्तविक विनिमय दर	क्रय-शक्ति समता
नम्य विनिमय दर	मूल्यह्रास
ब्याज दर विभेदक	स्थिर विनिमय दर
अवमूल्यन	प्रबंधित तिरती
घरेलू वस्तु की माँग	आयात की सीमांत प्रवृति
निवल निर्यात	खुली अर्थव्यवस्था गुणक

बॉक्स 6.1 विनिमय दर प्रबंध : भारतीय अनुभव

भारत की विनिमय दर नीति अंतर्राष्ट्रीय और देशीय विकास के साथ विकसित हुई है। स्वतंत्रता के बाद ब्रेटन वुड्स व्यवस्था की दृष्टि से भारतीय रुपया ब्रिटेन के साथ ऐतिहासिक संबंध के कारण पौंड स्टर्लिंग में अधिकीलित हुआ। जून, 1966 में रुपये का 36.5 प्रतिशत अवमूल्यन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। ब्रेटन वुड्स व्यवस्था के विखंडन और भारत के व्यापार में यूनाइटेड किंगडम के अंश के घटने से सितंबर, 1975 में पौंड स्टर्लिंग से रुपये का संबंध-विच्छेद कर दिया गया। 1975 से लेकर 1992 तक की अवधि के दौरान रुपये की विनिमय दर भारतीय रिज़र्व बैंक के द्वारा निर्धारित होती थी, जो

भारत के प्रधान व्यापारिक हिस्सेदार की मुद्रा के भारित बंडल के +/– 5% नाममात्र के व्यापारिक सहभागियों के अंतर्गत होता था। रिज़र्व बैंक दैनिक आधार पर हस्तक्षेप करता था। जिससे आरक्षित निधि के आकार में व्यापक परिवर्तन होता था। इस अवधि की विनिमय दर व्यवस्था का वर्णन एक पट्टी के साथ नाममात्र अधिकीलित के समायोजन के रूप में किया जा सकता है।

1990 के आरंभ में तेल की कीमत में अत्यधिक वृद्धि हुई और खाड़ी संकट के कारण खाड़ी के क्षेत्र से धन का आना रुक गया। इससे और अन्य देशी और अंतर्राष्ट्रीय विकास से भारत में अदायगी–संतुलन की समस्या गंभीर हो गई। व्यवसायिक बैंकों से उधार लेने की और अल्पकालिक साख की गुंजाइश कम हो जाने के फलस्वरुप चालू लेखागत घाटा के लिए वित्त प्रबंध कठिन हो गया। भारत की विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधि अगस्त, 1990 के 3.1 बिलयन यू एस डॉलर से तेजी से घटकर 12 जुलाई, 1991 में 975 मिलियन यू एस डॉलर रह गई (हमारी वर्तमान विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि 27 जनवरी, 2006 के अनुसार 139.2 बिलयन यू. एस. डॉलर थी)। विदेशों को सोना भेजने, गैर–जरूरी आयात को कम करने, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा बहु–पक्षीय (और) द्वि–पक्षीय स्रोतों से संपर्क करने, स्थिरीकरण और ढाँचागत सुधार लाने के अतिरिक्त 1 जुलाई और 3 जुलाई, 1991 को रुपये में दो चरणों में 18–19 प्रतिशत का अवमूल्यन किया गया। मार्च, 1992 में दुहरे विनिमय दरों वाला उदारवादी विनिमय दर प्रबंधन व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था के तहत विनिमय आय का 40 प्रतिशत रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित दर से सुपुर्द करना पड़ता था और 60 प्रतिशत का परिवर्तन बाज़ार द्वारा निर्धारित दर पर होता था। दुहरे दरों को 1 मार्च, 1993 को बदल दिया गया और चालू खाते की परिवर्तनीयता की ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए। अंतिम रूप से इसकी उपलब्धि 1994 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष समझौता के अनुच्छेद VIII को स्वीकार कर लेने के बाद मिली। इस प्रकार, रुपये की विनिमय दर बाज़ार के द्वारा निर्धारित होती है और अपने क्रय और विक्रय द्वारा रिज़र्व बैंक विदेशी मुद्रा बाज़ार में स्थिति को विनियमित रखता है।

अभ्यास

1. संतुलित व्यापार शेष और चालू खाता संतुलन में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. आधिकारिक आरक्षित निधि का लेन–देन क्या है? अदायगी–संतुलन में इनके महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. मौद्रिक विनिमय दर और वास्तविक विनिमय दर में भेद कीजिए। यदि आपको घरेलू वस्तु अथवा विदेशी वस्तुओं के बीच किसी को खरीदने का निर्णय करना हो, तो कौन–सी दर अधिक प्रासंगिक होगी?
4. यदि 1 रुपया की कीमत 1.25 येन है और जापान में कीमत स्तर 3 हो तथा भारत में 1.2 हो, तो भारत और जापान के बीच वास्तविक विनिमय दर की गणना कीजिए (जापानी वस्तु की कीमत भारतीय वस्तु के संदर्भ में)। संकेत : रुपये में येन की कीमत के रूप में मौद्रिक विनिमय दर को पहले ज्ञात कीजिए।
5. स्वचालित युक्ति की व्याख्या कीजिए जिसके द्वारा स्वर्णमान के अंतर्गत अदायगी–संतुलन प्राप्त किया जाता था।
6. नम्य विनिमय दर व्यवस्था में विनिमय दर का निर्धारण कैसे होता है?
7. अवमूल्यन और मूल्यह्रास में अंतर स्पष्ट कीजिए।
8. क्या केंद्रीय बैंक प्रबंधित तिरती व्यवस्था में हस्तक्षेप करेगा? व्याख्या कीजिए।
9. क्या देशी वस्तुओं की माँग और वस्तुओं की देशीय माँग की संकल्पनाएँ एक समान है?
10. जब $M = 60 + 0.06Y$ हो, तो आयात की सीमांत प्रवृति क्या होगी? आयात की सीमांत प्रवृति और समस्त माँग फलन में क्या संबंध है?
11. खुली अर्थव्यवस्था स्वायत्त व्यय खर्च गुणक बंद अर्थव्यवस्था के गुणक की तुलना में छोटा क्यों होता है?

12. पाठ में इकमुश्त कर की कल्पना के स्थान पर आनुपातिक कर $T = tY$ के साथ खुली अर्थव्यवस्था गुणक की गणना कीजिए।

13. मान लीजिए $C = 40 + 0.8Y D$, $T = 50$, $I = 60$, $G = 40$, $X = 90$, $M = 50 + 0.05Y$ (a) संतुलन आय ज्ञात कीजिए (b) संतुलन आय पर निवल निर्यात संतुलन ज्ञात कीजिए (c) संतुलन आय और निवल निर्यात संतुलन क्या होता है, जब सरकार के क्रय में 40 से 50 की वृद्धि होती है।

14. उपर्युक्त उदाहरण में यदि निर्यात में $X = 100$ का परिवर्तन हो, तो संतुलन आय और निवल निर्यात संतुलन में परिवर्तन ज्ञात कीजिए।

15. व्याख्या कीजिए कि $G - T = (S^g - I) - (X - M)$।

16. यदि देश B से देश A में मुद्रास्फीति ऊँची हो और दोनों देशों में विनिमय दर स्थिर हो, तो दोनों देशों के व्यापार शेष का क्या होगा?

17. क्या चालू पूँजीगत घाटा खतरे का संकेत होगा? व्याख्या कीजिए।

18. मान लीजिए $C = 100 + 0.75Y D$, $I = 500$, $G = 750$, कर आय का 20 प्रतिशत है, $X = 150$, $M = 100 + 0.2Y$, तो संतुलन आय, बजट घाटा अथवा आधिक्य और व्यापार घाटा अथवा आधिक्य की गणना कीजिए।

19. उन विनिमय दर व्यवस्थाओं की चर्चा कीजिए, जिन्हें कुछ देशों ने अपने बाह्य खाते में स्थायित्व लाने के लिए किया है।

सुझावात्मक पठन

डोर्नवुश, आर, और एस फिशर 1994, *माइक्रोइकोनॉमिक्स,* छठा संस्करण, मैक्ग्राहिल, पेरिस।

आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2006-07।

क्रुगमैन, पी. आर. और ओत्सफेल्ड, एम. 2000, *इंटरनेशनल इकोनॉमिक्स थ्योरी एंड पॉलिसी,* पाँचवा संस्करण, पियर्सन एजुकेशन।

तालिका 6.1: भारत का, अदायगी-संतुलन 2006-07 (अमेरिकी डॉलर मिलियन में)

	(अमेरिकी डॉलर मिलियन में)
1. निर्यात	128.1
2. आयात	–191.3
3. व्यापार संतुलन (2 – 1)	**–63.2**
4. अदृश्य (निवल)	53.4
(क) गैर-कारक आय	31.2
(ख) आय	–6.6
(ग) निजी अंतरण	27.9
5. चालू खाता संतुलन (3 + 4)	**–9.8**
6. विदेशी सहायता (निवल)	1.8
7. वाणिज्यिक ऋणग्रहण (निवल)	16.1
8. अनिवासी जमा (निवल)	4.3
9. विदेशीय निवेश (निवल)[1]	15.5
जिसका :	
(i) ब्याज (निवल)	8.5
(ii) निवेश सूची [2]	7.0
10. अन्य प्रवाह (निवल)	9.0
11. कुल पूँजी लेखा (निवल)	**46.4**
12. अदायगी संतुलन [5 + 11]	**36.6**
13. आरक्षित उपयोग (वृद्धि)	– 36.6

वास्तविक स्रोत: *आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08*

[1] विदेशीय निवेश प्रत्यक्ष निवेश (या विदेशीय प्रत्यक्ष निवेश) और निवेश सूची में विभाजित है। विदेशी प्रत्यक्ष पूंजी में विदेशीय निवेशक होते हैं जिनका नियंत्रण अंतिम स्थूणी उद्यम उत्पादन में होता है।

[2] निवेश सूची छोटी इक्विटी को दर्शाती है (इसमें व्यवस्थापक का नियंत्रण नहीं होता है) या ऋण विदेशी निवेशकों से स्टॉक बाजार के द्वारा लिया जाता है जिसका उद्देश्य निवेश पर प्रतिलाभ प्राप्त करना है।